॥ ॐ ॥

वैदिक-धर्मी-समाज।

अर्थात्

एक नवीन समाज के स्थापना का प्रस्ताव

(मङ्गल ग्रन्थ माला का १२ वाँ पुष्प)

लेखक—(फैजाबाद, रकाबगंज के झारखंडी महादेव जी के मन्दिर के महन्त श्री स्वामी ब्रह्मपुरी महराज के शिष्य)

श्री स्वामी मङ्गलानन्द पुरी जी

(प्रणेता—प्राचीन ७० श्लोकी भगवद्गीता, वृक्ष में जीव है, अफ्रिका-यात्रा, Vedic Tenets इत्यादि)

प्रकाशक—एल० यस० वर्मा एण्ड कम्पनी,

१७३ अत्रि अनुसूया प्रयाग (इलाहाबाद)

सं० १९८८ सन् १९३२ ई०

(सृष्टि सं० १,९७,२९,४९,०३२)

प्रथमावृत्ति २००० — मूल्य ॥) आठ आना

मिलने का पता—लेखक, प्रकाशक से।

मुद्रक—गोवर्धन लाल शर्मा, चिकित्सक प्रेस, कानपुर

निवेदन।

आप इस पुस्तक को पढ़ कर अपनी सम्मति (अनुकूल या प्रतिकूल) अवश्य मेरे पास लिख भेजें। समाचार पत्रों के सम्पादक महानुभावों से प्रार्थना है कि जिस अङ्क में इस पुस्तक का वर्णन करें, उसकी एक प्रति अवश्य भेज कर अनुगृहीत करें।

आपका हितैषी—

मंगलानन्द पुरी,

१—वैदिक-धर्म-समाज कार्यालय १७३ अत्रि अनुसूया, प्रयाग।

२—संन्यासी औषधालय, कानपुर।

स्वामी ओंकार सच्चिदानन्दजीकी
ओरसे बम्बई आर्यसमाजके
श्री मद्दयानन्द पुस्तकालयको अर्पण

विषय-सूची

प्रथम खण्ड—ईश्वर सम्बन्धी।

अध्याय	अध्याय का विषय		पृष्ठ
	प्रस्तावना		
	भूमिका		१—१०
प्रथम	आस्तिकता	...	११—१३
२ रा	देवता	...	१४—१७
३ ,,	उपासना	...	१७—२१
४ था	अवतार।	...	२२—२४
५ वाँ	तीर्थ-यात्रा।	...	२५—२६
६ ,,	उपवास व्रत।	...	२६—२७

द्वितीय खण्ड—प्रमाणिक ग्रन्थ।

प्रथम	ईश्वरीय ज्ञान वेद।	...	२८—३०
२ रा	वेदों के ऋषि।	...	३०—३४
३ ,,	वेदों पर विचार।	...	३५—३७
४ था	वेदों की प्राचीनता तथा गौरव।		३८—४०
५ वां	स्मृति और पुराण आदि।		४०—४१

तृतीय खण्ड—तत्वज्ञान (फ़िलासफ़ी)।

अध्याय	अध्याय का विषय		पृष्ठ
प्रथम	द्वैत अद्वैत वाद।	...	४२—४३
दूसरा	जीव और प्रकृति।	...	४४—
३ „	सृष्टि और प्रलय।	...	४५—
४ था	आवागमन	...	४६—४९
५ वां	भाग्य और पुरुषार्थ।	...	४९—
६ ठां	मुक्ति।	...	५०—५१

चतुर्थ खण्ड—कर्म-काण्ड।

प्रथम	कर्तव्य कर्म।	...	५२—५३
२ रा	शिक्षा सूत्र।	...	५३—५५
३ रा	चार आश्रम।	...	५५—५६
४ था	गृहस्थाश्रम।	...	५७—६३
५ वां	चार वर्ण।	...	६३—६४
६ „	शूद्रों को वेदाधिकार।	...	६५—
७ „	अन्त्यज उद्धार।	...	६६—
८ „	छूत-छात।	...	६७—६९
९ „	हिंसा अहिंसा और मांसाहार।		६९—८२
१० „	मादक-द्रव्य-निषेध।	...	८२—
११ „	आपद्धर्म।	...	६८—

पञ्चम खण्ड—परलोक सम्बन्धी ।

अध्याय	अध्याय का विषय	पृष्ठ
प्रथम	मृतक संस्कार । ...	८४—
२ सरा	,, श्राद्ध । ...	८५—८७
३ सरा	भूत प्रेत आदि । ...	८७—
४ था	स्वर्ग नरक । ...	८८—९१
५ वां	जादू टोना आदि । ...	९१—
६ वां	फलित ज्योतिष । ...	९१—९२

षष्ठम खण्ड—स्वजातीयता ।

अध्याय	अध्याय का विषय	पृष्ठ
प्रथम	संस्कृत और हिन्दी भाषा ।	९२—९४
२ सरा	स्वदेशी वस्तु प्रचार । ...	९४—९६
३ सरा	शुद्धि । ...	९६—९७
४ था	दाचते वैदिक धर्म । ...	९८—१०४

परिशिष्ट ।

१—	आर्य सामाजिक सज्जनोंसे निवेदन	१०४-११३
२—	उदार हिन्दू ,,	११३—११५
३—	शास्त्रार्थ का नियम	११५—११६

॥ओ३म्॥

प्रस्तावना

मैं सन् १९२६ में बगदाद (इराके अरब) के आर्यसमाजोत्सव पर गया था। वहाँ से वापस आने पर अपनी चिरकाल से सन्दूकों में बन्द पुस्तकों, लेखों आदि की देखभाल करने लगा कि यकायक मेरे हाथ में एक ट्रैक्ट "हिन्दू-समाज" नामक आ गया। इसको पढ़ते ही मुझे गत बीस वर्ष पूर्व की घटना का स्मरण हो आया। मैंने सन् १९०७ ई० में संन्यास ग्रहण करते ही उक्त पुस्तिका को उर्दू में छपवाया था, परन्तु उस समय इस सम्बन्ध में और कुछ कार्य न कर सका और मैं दूसरे कार्यों में दत्त चित्त रहा और उस मामले को बिलकुल भूल गया था।

अब सन् १९२७ में इस पुस्तिका 'हिन्दू समाज' को फिर पढ़ने से मेरे पूर्व ख्यालात तरोताज़ा हो गये, और तब से अब तक मैं बहुत अधिक ज्ञान तथा संसार का अनुभव बढ़ जाने से मेरे अन्तःकरण का यह निश्चय हुआ कि यतः वृद्धावस्था और शरीर रोग ग्रसित है, न जाने कब प्राण-पखेरू उड़ जायं अतः मेरा परम कर्तव्य है कि जन्म भर के स्वाध्याय का

सारांश धर्म (मज़हब) की छान बीन करने वाले सज्जनों की सेवा में उपस्थित कर दूं। प्रथम मैंने यह सोचा कि उक्त पुस्तिका की ही पुनरावृत्ति करा दूं, लेकिन फिर यह ख्याल आया कि यतः अङ्गरेजी में वैदिक साहित्य पर अनेकों पुस्तकें भारतीय तथा योरोपियन संस्कृतज्ञ विद्वानों ने प्रकाशित कराई हैं, अतः उन को पढ़कर और भी जांच कर लूं कि संसार वेदों के बारे में क्या कुछ मान रहा है, तब जैसा उचित हो करूं—इसी कारण मैं जहाँ एक ओर आर्य समाजों में भ्रमण और धर्म प्रचार (सिंगापुर, बङ्गकोक, मलायादेश आदि में) करता रहा, वहां दूसरी ओर डाक्टर अविनाशचन्द्र आदि की पुस्तकों—ऋग्वेदिक कल्चर इत्यादि का स्वाध्याय करता रहा। अतः जब मैंने खूब अच्छी तरह जांच पड़ताल कर ली है, तब जनता के समक्ष अब यह एक नवीन समाज के स्थापना का प्रस्ताव रखने लगा हूं।

पूर्व में मैंने इस प्रस्तावित समाज का नाम "हिन्दू-समाज" रखना विचारा था, और अब इस का नाम "वैदिक धर्मी-समाज" देता हूँ। पाठकों में से जो लोग ऐसे एक समाज का स्थापित होना उचित मानें कृपया इसकी सूचना मेरे पास भेज दें। ऐसे सौ पत्र आजाने पर उन सब के बहुमतानुसार सब कार्यवाही की जायगी—नाम भी उक्त दो में से जो बहु सम्मत होगा, रखाया जाकर विधि पूर्वक रजिष्ट्री करा दी जायगी।

श्र

यह पुस्तक जनवरी १९३० (पेनाँग और रंगून) में तैयार हो गई थी और आज से दो वर्ष पूर्व ही पाठकों की सेवा में पहुँच सकती, परन्तु धनाभाव के कारण मैं इसके पूर्व इस के प्रकाशन का प्रबन्ध न करा सका। पुस्तक का मूल्य आज कल प्रायः डेढ़ आना, दो आना फार्म अनुसार प्रकाशक लोग रक्खा करते हैं परन्तु मैंने एक आना फार्म के लेखानुसार ही रक्खा है; फिर भी उपदेशकों, संन्यासियों आदि की सेवा में मुफ़्त भेंट की जायगी।

यह पुस्तक यद्यपि छोटी है परन्तु धार्मिक अन्वेषण कर्त्ताओं के ज्ञान भण्डार में अवश्य कुछ न कुछ वृद्धि करेगी अतः आशा है कि आप इसको आद्योपान्त ध्यान पूर्वक पढ़ें और विचारेंगे। इति ओम् शम्।

सर्व हितैषी—

मंगलानन्द पुरी,

१—१०—१९३२ संन्यासी औषधालय, कानपुर।

ओ३म्

भूमिका।

ओम् तत् सत् परमात्मने नमः।

सब सज्जन महाशयों से निवेदन है कि मैं हिन्दू जाति का एक साधारण व्यक्ति हूँ। और यद्यपि कोई भारी विद्वान् सुविख्यात पण्डित न होने के कारण मेरा पाठकों की सेवा में ऐसा प्रश्न उपस्थित करना जैसा कि इस समय किया जा रहा है केवल छोटे मुंह बड़ी बात होगी, परन्तु इस ख्याल से कि सब बड़ों से जो बड़ा है उस के भरोसे जो कार्य शुद्ध हृदय और शुभ कामना से आरम्भ किया जाता है उसको वह स्वयम् अपनी अपार महिमा और महती कृपा से पूरा करा देता है; मैं अपने सत्य सनातन वैदिक धर्म के अटूट प्रेम के कारण इस बात पर विवश हुआ कि जो ख्यालात मेरे अन्तःकरण (दिल और दिमाग़) में चिरकाल से छिपे पड़े हैं और वे इस बन्द कोठरी में से बाहर निकलने के लिये अब बे-तरह हाथ पाँव पटक रहे हैं, उन्हें एक बार उछाल मारने दिया जाय।

बात हो कि मैं १७ वर्ष की आयु में (विद्यार्थी-दशा में) आर्य समाज का प्रेमी बन गया था और अब मेरी ५६ वर्ष की आयु हुई है, इतने भारी समय तक की धार्मिक छान बीन

जाँच-पड़ताल और खास कर गत २५ वर्षों से संन्यास ग्रहण करके सारा समय धर्म-प्रचार में लगाने के कारण धार्मिक जगत का मुझको भारी अनुभव प्राप्त हुआ है। और मैं उसको जनता पर प्रगट कर देना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ। गत दो साल से सिंगापुर स्याम आदि देशों में रोग ग्रसित हो जाने (वरन मृत्यु-शय्या पर पड़ जाने) से मैं हतोत्साह हो गया था कि कहीं ऐसा न हो कि शरीरान्त हो जाय और मैं अपने सारे जीवन भर के स्वाध्याय का परिणाम जनता पर प्रगट न कर सकूं; परन्तु पर ब्रह्म परमात्मा को शतशः धन्यवाद और नमस्कार है कि उसने अपार कृपा से मुझे कुछ आरोग्यता दे दी और इस योग्य बना दिया कि मैं इसी जन्म में अपने स्वाध्याय का सारांश धर्म पिपासु जिज्ञासु सज्जनों की सेवा में उपस्थित कर सका। अस्तु, पाठक गण मेरे उन अनुभवों को श्रवण करें:—

वेदों को मानने वालों में दो समुदाय सनातन धर्मी और आर्य्य समाजी इन दिनों पाये जाते हैं। प्रथम समुदाय कट्टर लकीर की फकीरी पर आरूढ़ है (जिसे अंग्रेज़ी में आर्थी-डाक्स Orthodox कह सकते हैं) और यह मानता है कि जो कुछ हमारे बाप दादाओं के समय से होता चला आया है, वह ही वेदों की शिक्षा है; और इससे विरुद्ध दूसरा आर्य-समाज एक सुधारक समुदाय है। इसके संस्थापक महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने अपना

शक्ति भर जितना सुधार सम्भव था किया और कराया और लोगों की श्रद्धा वेदों की ओर बड़े जोरदार शब्दों में आकर्षित किया। जांच पड़ताल करने से यह ज्ञात हुआ है कि वेदों के प्रेमी लोगों का एक और भी भारी समुदाय है जिस का अभी तक न तो कोई समाज है और न विधि पूर्वक संगठन है। यद्यपि इसमें धुरन्धर विद्वान, हिन्दू जाति के नेता, वैदिक सिद्धान्तों पर गम्भीरता पूर्वक मनन करने वाले (रिसर्च स्कालर reseach scholer) और कई यूरोपादि के संस्कृतज्ञ पक्षपात रहित विचार शील सज्जन गण सम्मिलित हैं। वे लोग न तो कट्टर सनातन धर्मी (वस्तुतः पौराणिक धर्मी) लोगों से सहमत हैं और न वे कदापि आर्य समाज के विषय को अङ्गीकार करने के लिये तैयार हैं।

आर्य-समाज ने हमें यह सिखलाया था और मैं गत ४० वर्षों से इसी धुन में मग्न था कि वेदों पर जो सायण महीधर आदि के भाष्य हैं, वे अशुद्ध हैं और हमें वेदों के यथार्थ ज्ञान से कोसों दूर ले जाते हैं और इसी कारण श्री स्वामी दयानन्द महाराज ने अपना वेद भाष्य प्रकाशित करा कर संसार को अन्धकार से बचा लिया है और काशी का पण्डित मण्डली इस को स्वीकार नहीं करती या अन्य संस्कृतज्ञ ब्राह्मण लोग इसके विरोधी बन रहे हैं तो इसमें केवल इनका स्वार्थ ही काम कर रहा है। क्योंकि मूर्ति पूजा से, मन्दिरों से और तीर्थ आदि से सहस्रों नहीं बल्कि

लाखों रुपयों का लाभ इनको प्राप्त हो रहा है तो फिर भला वे क्यों दयानन्द से ऐक्यता कर के इस अलभ्य लक्ष्मी पर लात मारें और क्यों अपनी भारी हानि होने दें इत्यादि।

परन्तु जब मैंने वैदिक साहित्य का स्वाध्याय भली प्रकार किया और देखा कि एक कमिश्नरी के उच्च पद पर नियुक्त सज्जन (जो तीन चार सहस्र रुपये मासिक वेतन पाने के कारण धन की लालच से धर्म घातक नहीं माने जा सकते) स्वर्गवासी श्रीमान् रामेशचन्द्रदत्त महोदय तथा भारतमाता के सच्चे सपूत और राष्ट्रीय महान् नेता स्वर्गवासी लोकमान्य पण्डित बाल गङ्गाधर तिलक महाराज इत्यादि जैसे संस्कृत और वेदों के धुरन्धर विद्वानों का निर्णय दयानन्द भाष्य के अनुकूल नहीं है, तो मेरा माथा ठनका और मैंने तीव्र उत्कण्ठा से अनुसन्धान आरम्भ किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि मैं इस निर्णय पर पहुंच गया हूं कि उक्त विद्वानों के अनुयायी मुख्यतः अङ्गरेजी के ग्रैजुयेट महाशयों का एक ऐसा जत्था इस समय विद्यमान है, जो सहस्रों ही नहीं वरन् लाखों की संख्या में होगा। वे सब सुशिक्षित वैदिक धर्म के प्रेमी और सच्चे भक्त तो हैं, परन्तु न तो वे अपने को सनातन-धर्मी (पौराणिक) कहने को तैयार हैं और न आर्य-समाजी ही। इसलिये मेरा यह ख्याल हुआ कि ऐसे धर्मात्मा सज्जनों का भी एक समाज रहना चाहिये। क्योंकि अगर उनसे कोई पूछे कि आप कौन हैं? तो वे क्या

उत्तर देंगे (प्रायः वे यों कह दिया करते हैं कि मैं न सनातनी हूं और न आर्य-समाजी और न मैं "अवैदिक मतावलम्बी" हूं, वरन एक स्वतन्त्र हिन्दू हूं), अतः इस बात की भारी आवश्यकता है कि इन सज्जनों का एक समुदाय बन जाय।

हमारी समझ में ऐसे समुदाय का नाम वैदिक धर्मी समाज होना चाहिये। जिसका अर्थ यह होगा कि "वेदों का धर्म मानने वाले लोगों का समाज" और संक्षेप में हम "वैदिक समाज" भी कह सकेंगे। सभ्यों को वैदिक धर्मी कहा जायगा। इस समाज के मन्तव्य क्या होंगे ? यही बात इस पुस्तिका में दर्शायी गई है।

पाठकों के आसानी के लिये हमने ऐसा किया है कि वेदों के तीनों अनुयायियों (सनातनी, आर्य-समाजी, वैदिकधर्मी) के ख्यालात और सिद्धान्तों की तुलना कर दी है और प्रश्नोत्तर रूप में अवैदिक मतावलम्बियों (मुसलमानों, ईसाइयों) के शंकाओं के समाधान भी थोड़े बहुत कर दिये हैं।

आप हमारे इस वैदिक धर्मी समाज के सिद्धान्तों को इस पुस्तिका में पढ़ कर विचार करें। इन पर मैंने पुष्कल युक्ति प्रमाणों को संग्रह कर लिया है, परन्तु उन सब को इस पुस्तिका में सम्मिलित करने से यह भारी पुस्तक बन जाती, इस कारण यह उचित प्रतीत हुआ कि अभी केवल सूत्रों सदृश अत्यन्त संक्षेप में वैदिक धर्मी समाज के सब

सिद्धान्तों को प्रकाशित करा दूं। फिर दूसरी भारी पुस्तक "वेदार्थ-प्रकाश" नामक प्रकाशित की जाय। इसलिये अगर किसी विषय के युक्तियों प्रमाणों के अभाव के कारण पाठकों को कोई शंका रह जाये, तो शान्ति रक्खें, धीरज धरें, घबरायें नहीं—वे सब निस्सन्देह हमारी उक्त बड़ी पुस्तक से निवृत्त हो जायंगी।

शायद हमारे आर्य-समाजी भ्रातागण ऐसा ख्याल करें कि हमारा अभिप्राय उनका कुछ विरोध करने का है, तो हम यह कथन कर देना उचित समझते हैं कि ऐसा समझना भारी भूल होगी। आर्य समाज से विरोध करने का कोई कारण नहीं हो सकता—वह जो कार्य कर रहा है धन्यवाद है है। हमें इसकी चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाने में कोई लाभ नहीं दीखता, बल्कि सच तो यह है कि हम इसके कार्य को और भी सरल बना देने के लिये इसी के सदृश एक और प्लेटफार्म (धार्मिक-वेदी) इसलिये तैयार कर रहे हैं कि जिन लोगों का यहाँ किसी प्रकार भी निर्वाह नहीं हो सकता वे यहाँ आ जायं। आखिर वे बेचारे कहाँ जायं? उनके लिये भी तो कोई स्थान होना चाहिये। दृष्टान्त में यों समझिये कि कई मद्रासी बंगाली ऐसे सज्जन देखे गये हैं जो आर्य-समाज की सब बातों को मानते हैं, परन्तु मांस मछली का त्याग नहीं कर सकते, इस कारण वे बेचारे लाचार हैं कि आर्य-समाज में नहीं प्रविष्ट हो सकते। ऐसे

महाशयों को हमारा यह समाज कबूल करेगा इत्यादि।

इसलिये आर्य-समाजी भाइयों से मेरा यह नम्र निवेदन है कि मैंने व्यक्ति-गत रूप से १७ से ४९ वर्ष तक की सारी आयु में जो कुछ सीखा पढ़ा है, उसका श्रेय आर्यसमाज को ही प्राप्त है और अब मैं जो यह प्रश्न (एक नवीन समाज की स्थापना का) जनता के समक्ष उपस्थित करने लगा हूं, यह भी इसी अभिप्राय से है कि हमारे प्यारे वैदिक धर्म का प्रचार दिन दूना रात चौगुना हो सके। और हमें भारी आशा है कि अनेक उदार आर्य सामाजिक महाशय गण ही हमारा हाथ बटावेंगे और हमारे साथी बन कर वैदिक धर्म का प्रचार यूरोप अमेरिका तक करायेंगे।

प्रश्न—आर्य-समाज तो वैदिक धर्म का सारे संसार भर में प्रचार करा ही रहा है अतः एक नवीन समाज की स्थापना इसी कार्य निमित्त होना कुछ आवश्यक नहीं प्रतीत होता।

उत्तर—आर्य समाज तो भी स्वामी जी महाराज के वेद भाष्य पर अपना आधार रखता है। जिन लोगों को वह मान्य नहीं है—सायण, महीधर, ग्रिफ़िथ, मोक्षमूलर आदि पर श्रद्धा है—उनके निमित्त हम यह नवीन समाज स्थापित कराना चाहते हैं।

प्रश्न—कई आर्य समाजी संस्कृतज्ञ पण्डित गण निरुक्त निघण्टु आदि से दयानन्द कृत वेदभाष्य को यथार्थ सिद्ध

करने के लिये तैयार हैं, अतः सायण महीधरादि द्वारा फैलाये गये अन्धकार में आप जनता को फिर भी प्रवृत्त कर के भारी भूल करेंगे?

उत्तर—आप को ज्ञात रहे कि सायण महीधरादि के वेद-भाष्यों को भी व्याकरण, निरुक्त निघण्टु और शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुकूल सिद्ध कर सकने वाले संस्कृतज्ञ पण्डितों का घाटा नहीं है—यह तो आप और वे (संस्कृतज्ञ विद्वन् मण्डली) निपटते रहियेगा, किन्तु हमें तो एक सीधी सी बात जनता के समक्ष रखनी है और वह यह है कि जो लोग सायण महीधरादि के वेद-भाष्यों पर ही निर्भर रहना चाहते हैं, परन्तु सनातनी कट्टर पौराणिक धर्मी (जो केवल शुद्धि, बाल विवाह, विधवा विवाह आदि का विरोध करने मात्र को ही सनातन-धर्म मान बैठे हैं। शारदा बिल जैसे कानून तक का विरोध करना ही सनातन धर्म माना जा रहा है) नहीं बनना चाहते उन जैसे वेदानुयायी सज्जनों के लिये यह हमारा वैदिक-धर्मी-समाज स्थापित किया जायगा।

रहा यह कि सायण महीधरादि ने संसार को अन्धकार में डाल दिया है? यह बात कहाँ तक सत्य है, हम इस पर अपनी बड़ी पुस्तक "वेदार्थ-प्रकाश" में विचार करेंगे, और परमात्मा की कृपा से यह सिद्ध कर देंगे कि उनके वेद-भाष्य "अन्धकार मय" नहीं हैं।

प्रश्न—अगर ऐसा मानोगे तो विपक्षियों (मुसलमानों ईसाइयों) के भारी आक्षेपों के उत्तर बिलकुल नहीं दे सकोगे, यह तो महर्षि दयानन्द के योग बल का ही प्रताप है कि उन के गूढ़ाशय युक्त वेद-भाष्य पर किसी की दाल नहीं गल सकती।

उत्तर-अच्छा, धैर्य्य रखिये हमारा "वेदार्थ प्रकाश" छप जाने दीजिये, तो आप देखेंगे कि सायण महीधरादि ही पर निर्भर रहते हुये हम किस प्रकार वेद विरोधियों को मुंह तोड़ जवाब दे कर निरुत्तर कर सकेंगे। निदान यों समझिये कि वेदों पर दो पक्ष हैं—एक दयानन्द भाष्य द्वारा, दूसरा सायणादि भाष्यों द्वारा, उन का संसार में प्रचार कराना पसन्द करता है। प्रथम के लिये आर्य समाज गत ५० वर्षों से अपना काम कर रहा है और दूसरे के लिये अब हमारा यह वैदिक-धर्मी समाज कटिबद्ध होगा।

पाठक गण! आइये वेदिक धर्मी समाज के सिद्धान्तों को मनन कीजिये और आप इन में बड़ी खूबी यह पायेंगे कि यहां किसी बात पर एक तरफा डिग्री नहीं दे दी गई है। हम आप पर संक्षेप में यह प्रगट कर देना चाहते हैं कि वेदों शास्त्रों को ध्यान पूर्वक पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि हमारे शास्त्रों ने सब लोगों को एक ही लाठी से नहीं हांका है, न सब धान बाईस पन्सेरी की लोकोक्ति पर अमल किया है, वरन् अधिकार भेद से सभी प्रकार के मनुष्यों का निर्वाह

चलाया है—अतः यहां प्रत्येक द्वन्द्वों और परस्पर विरोधी विषयों के दोनों पक्षों को अधिकार भेद से उचित माना है । जैसे कि द्वैतवाद और अद्वैतवाद, भाव या अभाव से सृष्टि का उत्पन्न होना, ब्रह्म परमात्मा की उपासना निराकार या साकार मान कर करना, वर्ण की श्रेष्ठता जन्म और गुण कर्म दोनों से मानना, मान्साहार या मान्स निषेध होना इत्यादि इत्यादि ।

प्रयाग
ता० ११-४-२१

सर्व-हितैषी—
मङ्गलानन्द पुरी संन्यासी ।

॥ ओ३म् ॥

वैदिक धर्म-समाज।

प्रथम खण्ड—"ईश्वर सम्बन्धी"

प्रथम अध्याय।

आस्तिकता।

वैदिक धर्म-समाज एक ईश्वर को मानता है, जो निराकार, सर्व व्यापक, ज्योतिः स्वरूप, घट-घट अन्तर्यामी है (इत्यादि जैसा वेदादि में आया है)।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु आदि उसी एक परमात्मा के गुण-वाचक नाम हैं, ऐसा वेद कहता है (ऋग्वेद १।१६४।४६)।

सनातन धर्म यह मानता है कि इस इस नाम के देवता विद्यमान हैं, जैसे ब्रह्मा जी एक देवता हैं जिनके ४ सिर और ४ भुजायें हैं, और वे सत्य लोक नामक स्थान में रहते हैं इत्यादि। परन्तु वेदों में ऐसा कोई व्यक्ति (चार सिरों और ४ भुजाओं वाला) वर्णन नहीं किया गया, अलबत्ता "ब्रह्मा" शब्द अवश्य आया है। इसलिये वैदिक धर्म समाज यह मानता है कि ब्रह्मा आदि शब्द वेदों में ईश्वर के गुणों को वर्णन करने के लिये आये थे, परन्तु पुराणों में साधारण वर्ग

के लोगों को समझाने के लिये इन ईश्वरीय गुणों को एक एक रूप बना लिया गया है। ब्रह्मा वेदों के प्रकाशक (मुलहिम) माने गये हैं—वेद चार हैं, इसलिये यह रूपक बाँधा गया कि वे चार हाथों में चारों वेदों को लिये हुये चारों मुखों से उन चारों को पढ़ और पढ़ा रहे हैं।* उनकी स्त्री "सरस्वती देवी" (विद्या) मानी गई इत्यादि अलंकारों से यह बात सिद्ध होती है कि यह सब पुराणों की गाथायें हैं। वेदों में तो केवल ब्रह्मा शब्द आया है जो परमात्मा का गुण-वाचक नाम है। इसी प्रकार विष्णु, शिव आदि भी ईश्वरीय गुणों या शक्तियों को कहा गया है। वह परमेश्वर सारे संसार का मालिक प्रभु है, उसी ने इसे रचा है, वही पालन-पोषण करता और प्रलय काल में वही संहार करता है इत्यादि।

प्रश्न—क्या परमेश्वर को आप सर्व शक्तिमान (क़ादिर-मुतलक़) मानते हैं कि वह जो चाहे कर सके?

उत्तर—हां, हम इस बारे में प्रमाणों को बड़ी पुस्तक "वेदार्थ प्रकाश" में सुनायेंगे।

प्रश्न—परन्तु आर्यसमाज तो ऐसा नहीं मानता कि परमेश्वर जो चाहे कर सकेगा और इसी कारण मुसलमान-मौलवी लोग ठट्ठा उड़ाया करते हैं कि हिन्दुओं आर्यों का

*वेद तो एक था, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि जब व्यास जी ने एक से चार वेद बना दिये तब चतुर्मुखी ब्रह्मा का रूपक बाँधा गया।

परमेश्वर कैसा है जो एक मकड़ी की टाँग भी बिना प्रकृति की सहायता के नहीं बना सकता इत्यादि—क्या इन मोलवी लोगों के इस आक्षेप का कोई उत्तर दिया जा सकता है ?।

उत्तर—इन को यह बतला दो कि जिस प्रकार कुरान में यह लिखा है कि ख़ुदा क़ादिर-मुतलक़ है और वह जो चाहे कर सकता है, उसी प्रकार वेदों शास्त्रों में भी ऐसी ही इबारत मौजूद है। और यतः हमारे वेदादि उनके कुरान आदि से पुराने हैं, इसलिये ऐसा मानना पड़ेगा कि कुरानादि में यह शिक्षा हमारे यहाँ से ही ले ली गई है कि परमेश्वर सर्व शक्तिमान है, अर्थात् वह जो चाहे कर सकता है, कोई शर्त नहीं लगाई जा सकती कि वह ऐसा कर सकता है और वैसा नहीं कर सकता इत्यादि।

इसलिये मौलवी साहबों को यह ज्ञात रहे कि कुरान आदि में जो कुछ भी उत्तमतायें हैं, वह सब की सब हमारे यहाँ से ले ली गई हैं; और जो उनमें दोष (नुक़्स या गुमराह करने वाली शिक्षा) हैं, वह उनकी अपनी निज गढ़न्तें हैं—इसलिये अब वे हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की फिक्र छोड़कर स्वयम् अपना कल्याण चाहें तो शुद्ध होकर वैदिक धर्मी बन जायं। (हमारे इस समाज के सभासद हो जायं)।

द्वितीय अध्याय।

देवता।

वैदिक धर्मी-समाज यह मानता है कि परमेश्वर (देवों का देव = महादेव) ने देवताओं को पैदा कर के संसार का सारा प्रबन्ध उनके सिपुर्द कर दिया है। जिस प्रकार किसी राजा के मंत्री, न्यायाधीश, कोतवाल आदि हुआ करते हैं, इसी प्रकार परमात्मा के दरबार में ये देवता लोग हैं। मुसलमान ईसाई आदि भी फिरिश्तों को मानते हैं—जिब्राइल, मीकाइल, इसराईल आदि उनके यहां ब्रह्मा, विष्णु, शिव जैसे माने गये हैं।

कई लोग ३३ करोड़ देवताओं का होना मानते हैं। वेदों में एक जगह ३३ और दूसरी जगह ३३३९ (यजुर्वेद अध्याय ३३ मन्त्र ७) देवताओं की संख्या बतलाई गई है, इसी को बढ़ाकर पुराणों में ३३ करोड़ आदि कर दिया गया हो तो यह सम्भव है।

प्रश्न—क्या देवताओं की उपासना की जानी चाहिये?

उत्तर—उपासना तो इन सब देवताओं के भी मालिक प्रभु "महादेव परमात्मा" की करनी चाहिये। भगवद्गीता में लिखा है कि अगर कोई देवताओं की भी पूजा करता है तो वह बिना विधि के मेरी (अर्थात् परमात्मा की) ही उपासना करता है (देखो भ० गी० ९।२३) इसलिये हमारा यह

कथन है कि फिर अधूरा काम (बिना बिधि) क्यों किया जाय; क्यों न विधि पूर्वक अर्थात् देवों के देव "महादेव" परमात्मा एक ब्रह्म (बहदहू ला शरीक) की उपासना की जाय।

प्रश्न—मुसलमान मौलवी लोग कहते हैं कि "हिन्दू धर्म हजारों देवता-परस्ती सिखलाता है, इसलिये ऐ हिन्दुओ, आओ मुसलमान बन कर एक बहदहू ला शरीक खुदाबन्द करीम की इबादत करो"—हम इसका उनको क्या उत्तर दें।

उत्तर—उनसे कह दो कि तुम्हारी पाक किताब "कुरान-शरीफ" के संसार में आने से हजारों वर्ष पूर्व काल से ही हमारे यहां एक ब्रह्म परमात्मा की उपासना का वर्णन लिखा चला आता है (हम प्रमाणों को बड़ी पुस्तक में सुनायेंगे) इसलिये उनसे कहो कि वे स्वयं तो गुमराह (पथ-भ्रष्ट) हो ही रहे हैं, हमें हिन्दुओं को भी मुसलमान बना बना कर क्यों धर्मच्युत करते हैं?। अगर सचमुच एक बहदहू ला शरीक परमात्मा के उपासक बनना चाहते हो तो वैदिकधर्मी बन जाओ। मुसलमान रहते हुये तो उन्हें कलमा में अल्लाह के साथ मुहम्मद साहब को शरीकदार बनाना पड़ता है कि "ला इलाः इल्लल्लाः मुहम्मद रसूलल्लाः (यह मुसलमानों का कलमा है) अर्थात् "नहीं है कोई सिवाय अल्लाह के, परन्तु मुहम्मद साहब अल्लाह के रसूल (दूत) हैं"। इस प्रकार इसलाम तो खुदा के साथ मुहम्मद साहब को एक आसन पर बिठला रहा है, फिर बतलाये कि बहदहू ला शरीक (एक

ब्रह्म) की उपासना कहां रह गई ? इसके मुकाबिले में हमारे गायत्री में या दूसरे किसी भी वेद मन्त्र में ओम् परमात्मा के साथ किसी को साझीदार नहीं बनाया गया। इसलिये सच्चा तौहीद-इलाही (एक ईश्वर वाद) तो हमारे वैदिक-धर्म में है।

प्रश्न—अच्छा, ईसाई पादरी लोग भी जो हमें कहा करते हैं कि "ऐ हिन्दुओ ! तुम राम, कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु आदि का साथ छोड़ कर ईसा मसीह की शरण में आ जाव तो मुक्ति पाओगे, क्योंकि ईसा खुदा का इकलौता बेटा था, वह अपने बाप से सिफारिश करके तुम्हारे पाप क्षमा करा देवेगा। बाप अवश्य अपने बेटे की बात मानेगा" या वह स्वयं तुम्हारे पापोंको अपने ऊपर लेलेवेगा, इत्यादि-हम उनको क्या उत्तर दें ?

उत्तर—उनसे कह दो कि तुम भारी भूल भुलैयां के गड्ढे में स्वयं पड़े हुए हो और हमें भी उसी में गिराना चाहते हो !! भला परमेश्वर भी क्या हम लोगों जैसा है कि उसके बेटा पैदा हुआ हो ! ईसा अगर खुदा का बेटा था तो हमारे राम, कृष्ण, व्यास, वसिष्ठ आदि भी उसी खुदा के बेटे थे, या हम सब मनुष्य मात्र उसी परमेश्वर के पुत्र हैं। ईसा हमारी सिफारिश क्या करेंगे, वे बेचारे स्वयं अपने को तो सूली (फाँसी) से भी न बचा सके। और हमें ऐसी कोई सिफारिश दरकार नहीं है। हम अपने कर्मों पर भरोसा रखते हैं और अपने पांवों पर खड़े होंगे। हमारे वेदादि को

भक्ति उत्तम शिक्षा यह है कि "जो जैसा करे सो तैसा फल पावे। यही प्रभु विधान है।"

इसलिये हम अपने कर्मों और पुरुषार्थ से ही मुक्तिधाम को प्राप्त करेंगे और ये आर्य्य साहब। आप भी अपना कल्याण चाहते हो तो अक्ल और साइन्स (विज्ञान) से विरुद्ध शिक्षा देने वाली इञ्जील का पीछा छोड़ कर वैदिक धर्म के शरण में आ जाइये तो आपको भी मुक्ति मिल सकेगी।

तृतीय अध्याय।

उपासना।

(निराकार साकार)

परमात्मा निराकार सर्वव्यापक है। उसका हृदय में ध्यान करो, मन में ओ३म् नाम का जप करो, योगाभ्यास, प्राणायाम आदि द्वारा आत्मिक उन्नति करो, यही शिक्षा वेदों, उपनिषदों वेदान्त तथा भगवद्गीता की है।

निराकार ब्रह्म की मूर्ति नहीं बन सकती, न वेदों में मूर्ति पूजा का विधान है। अलबत्ता वेदों में इस समस्त ब्रह्माण्ड को अलङ्कारिक भाषा में परमात्मा का शरीर माना गया है, इस लिये साकार उपासना को भी वेद विरुद्ध नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार वैदिक धर्म समाज का कर्त्तव्य यह होगा कि निराकार और साकार उपासना ये दोनों अधिकार भेद से ठीक हैं। उच्च कोटि के लोगों के लिये निराकार उपासना है, और साधारण वर्ग वालों के लिये साकार उपासना निर्धारित कर दिया गया है।

प्रश्न—मुसलमान मोलवी लोग कहा करते हैं कि, हिन्दू मज़हब बुत-परस्ती की तालीम देता है, इस लिये हिन्दुओं को चाहिये कि वे उसे छोड़कर इसलाम में दाखिल हो जायं हम उनको क्या उत्तर दें?

उनसे कहदो कि हमारे वेदों और दूसरे प्राचीन ग्रन्थों में तो बुत-परस्ती (मूर्त्ति-पूजा) का कहीं लेश मात्र भी वर्णन नहीं है, केवल पुराणों में मूर्खों और साधारण लोगों के लिये यह मूर्त्ति-पूजा चलाई गई है। लेकिन आप मुसलमान लोग किस मुंह से हमको बुत-परस्त कह सकते हैं, जब कि आप के यहां मक्का-परस्ती, काबा-परस्ती, संग-असवद-परस्ती, ताजिया-परस्ती और कब्र-परस्ती आदि की भरमार हो रही है। आप लोगों को यह आज्ञा दी गई है कि तुम काबा (अरब के मक्का शहर की मस्जिद, जिसको खुदा का घर कहा जाता है) की ओर मुंह कर के नमाज़ अदा करो। यह बुत-परस्ती का भाई "किबला-परस्ती" नहीं तो और क्या है? फिर जो लोग हज (तीर्थ-यात्रा) करने के लिये उस खुदा के घर

"काबा" को जाते हैं उनको वहां एक काला पत्थर (संगे असवद) चूमना पड़ता है,

अरब देश में चूमना-बोसा देना ऐसा ही है जैसा कि हम लोगों में हाथ जोड़ कर नमस्कार किया जाना अतः यह "संगे असवद परस्ती" क्या बुत-परस्ती नहीं है? कहते हैं कि अगर कोई हज्ज करने जाय और इस काले पत्थर को बोसा न देवे तो उसकी "जयारत" (तीर्थयात्रा) पूरी न होगी अधूरी मानी जायगी इत्यादि।

तुम मुसलमान मोलवी साहबों से कह दो कि जनाब हजरत! हम बेचारे हिन्दू लोग तो केवल बुत-परस्त कहे जा सकते हैं (यद्यपि हमारे वेदादि में निराकार उपासना भी पाई जाती है) लेकिन आप लोग तो मुर्दे तक का भी पीछा नहीं छोड़ते- कबरों पर चढ़ावा चढ़ाया जाता और सिजदे भी किये जाते हैं। कहीं कहीं उस कबर में गड़े हुए मुर्दे के नाम पर प्रार्थना पत्र लिख लिख कर मुसलमान लोग किसी पास के पेड़ पर लटका दिया करते हैं। इन प्रार्थना पत्रों में उस मुर्दे से नौकरी लग जाने, रोग दूर हो जाने, सन्तान पैदा होने, धन दौलत मिल जाने आदि की प्रार्थनाओं की आशा करते हैं। अरे भाई! वह जो बेचारा स्वयम् मुर्दा होने से लाचार और विवश है किसी को क्या दे सकता है? अगर वह मुर्दा तुम्हारी अभिलाषायें पूरी कर सकता, तो स्वयं क्यों न उठ बैठता इत्यादि प्रकार से मूर्खता, उजड्डता और बे-समझी

के गड्ढे में पड़े हुये तुम मुसलमान लोग किस मुंह से हम पर आक्षेप कर सकते हो ? जरा दर्पण में अपना मुंह तो देख लो—हां अगर अपना कल्याण चाहते हो तो इस गुमराह (धर्म च्युत) मज़हब का त्याग करके सत्य सनातन वैदिक धर्म की शरण में आ जाव।

प्रश्न—(आर्य समाजी) दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने अपने सत्यार्थ प्रकाश में मूर्त्ति पूजा करना "पाप" माना है, उसका क्या समाधान है?

उत्तर—"पाप" की परिभाषा स्वयं उन्होंने जो करदी है उससे ही उनका यह निर्णय खंडित हो जाता है। स्वामी जी यह बतलाते हैं कि जिस कार्य को करते समय शङ्का, लज्जा, भय उत्पन्न हो वह पाप है (जैसा—चोरी, व्यभिचार आदि में होता है) परन्तु मूर्त्ति पूजा करने वालों को इस कार्य में शङ्का होती है न लज्जा, न भय; बल्कि वह मूर्त्ति पूजक देव मन्दिरों में बड़े हर्ष और श्रद्धा भक्ति के साथ प्रवेश करता है; इस लिये मूर्त्ति-पूजा "पाप" तो कदापि नहीं माना जा सकता। फिर यह बात भी विचारणीय है कि पाप पुण्य मनुष्य के हृदय के भावना (नीयत) पर निर्भर है। घटघट व्यापी परमात्मा हृदय में बैठे हुये देख रहे हैं कि उस मूर्त्ति पूजक के हृदय की भावना शुद्ध है या नहीं !! यदि शुद्ध है तो पाप कदापि नहीं हो सकता।

प्रश्न—अच्छा, क्या परमेश्वर अपने भक्तों पर प्रसन्न हो कर उनके पापों को क्षमा भी कर देता है?

उत्तर—हां, वेदादि के अनेकों प्रमाण हम सुनायेंगे।

प्रश्न—परन्तु आर्य्य-समाज ऐसा नहीं मानता—वह कहता है कि परमेश्वर किसी का कोई रत्ती बराबर पाप भी क्षमा नहीं करेगा। इस लिये मुसलमान मोलवी लोग मज़ाक उड़ाया करते हैं कि वाह! यह आर्यों हिन्दुओं का परमेश्वर कैसा बे रहम ज़ालिम है कि उसकी कोई हज़ार मिन्नत खुशामद करे लेकिन वह टस से मस भी नहीं होता। इसके मुकाबिले में हमारा खुदा ऐसा रहीम है कि अगर तुम उस पर ईमान लाओ याने मुसलमान बन जाओ तो तुम्हारे सारे गुनाहों को माफ करके तुमको जन्नत या बिहिश्त (स्वर्ग) में भेज देवेगा। हम उन मुसलमानों के इस आक्षेप का क्या उत्तर दें?

उत्तर—उनसे कह दो कि कुरान जिस प्रकार खुदा की इबादत करने वालों के पापों को क्षमा करा देने का वादा देता है उसी प्रकार और निस्सन्देह उसी प्रकार हमारे वेदों का भी सिद्धान्त है। उन प्रमाणों को आप सुनेंगे तो सन्तोष हो जायगा। अतः इस कारण से भी किसी हिन्दू को मुसलमान बनने की आवश्यकता नहीं है। हमें हिन्दू रहते पर ही स्वर्ग की प्राप्ति हो जायगी।

चतुर्थ अध्याय।

अवतार।

सनातन धर्म यह मानता है कि परमेश्वर यद्यपि निराकार रूप है, परन्तु संसार में वह साकार अर्थात् अवतार लेकर आता है। आर्य्य-समाज इसका खण्डन करता है। वैदिक धर्म्म समाज यह मानेगा कि परमेश्वर जो सर्व व्यापक निराकार रूप है वह तो अवतार लेकर एक देशी नहीं बनता, परन्तु जिनको अवतार कहा जाता है उनमें परमात्मा की विभूति या शक्ति विराजमान होती है (देखो भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक ४१)। ऐसे ईश्वरीय विभूति सम्पन्न लोग दूसरे मनुष्यों से बढ़कर हुआ करते हैं। वे संसार में नेता माने जाते और महान् आत्मा (Great men बड़े आदमी) कहलाते हैं और संसार उनके सामने सिर झुकाता है। उन का जितना मान सत्कार किया जाय थोड़ा है; इसीको वीर-पूजा (हीरो वर्शिप Hero worship) कहा जाता है।

परमात्मा का कोई कार्य अवतार लिये बिना अटका हुआ नहीं है; उसने संसार का प्रबन्ध ऐसी उत्तमता के साथ कर दिया है कि सब कार्य आप ही आप होते चले जाते हैं। यह जो हमारे सनातनी भाई कहा करते हैं कि रावण कंस आदि बड़े दुष्ट पापी थे और किसी से वध न होते थे इस

लिये परमेश्वर को राम कृष्ण का अवतार धारण करके उनका जन्म लेना पड़ा। यह या ऐसी बातों का मानना परमात्मा की महिमा को घटाता है। भला परमात्मा के सामने इन रावण कंस आदि बेचारों की गिनती ही क्या थी कि उसको आकर दस महीने माता के गर्भ में उलटा टंगने आदि कष्टों को सहन करने के लिये विवश होना पड़ता। रावण कंस आदि को मारने के लिये मुख्य देवता काफी थे।

यद्यपि अवतार का होना वेदों के विरुद्ध है परन्तु जिन राम कृष्ण आदि को अवतार माना जाता है उनको हमारा समाज संसार के बड़े बड़े मनुष्य, आदर्श, मर्यादा पुरुषोत्तम, धर्मात्मा, वेदों के रक्षक, परोपकारी, देश जाति धर्म-सुधारक आदि मानता है। रामायण भागवत आदि द्वारा इनके जीवन चरित्रों को सुनना, विशेष अवसर (नाटक आदि) द्वारा उनके जीवन की घटनाओं से भविष्य सन्तानों को शिक्षित कराना और उनके पदानुगामी बनने का यथा सम्भव प्रयत्न करना इत्यादि हमारा परम कर्तव्य है। पुराणों के मच्छ, कच्छ, वराह आदि अवतारों की समस्या कि इन पशु पक्षियों आदि को अवतार क्यों मान लिया गया है विद्वानों के लिये विचारणीय है।

जिस प्रकार त्रेता में श्री रामचन्द्र जी और द्वापर में श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज परमात्मा की मुख्य विभूति लेकर

संसार में आये थे, इसी प्रकार इस कलियुग में बुद्ध महाराज और स्वामी शङ्कराचार्य जी हो गये हैं। इस शताब्दी में स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज भी इसी श्रेणी में माने जायेंगे। आज कल लोग श्रीमान् महात्मा मोहनदास कर्म चन्द गाँधी महाराज को संसार का सबसे बड़ा आदमी मान रहे हैं, अतः क्यों न इनको भी इसी श्रेणी में मान लिया जाये।

दूसरे देशों में जिन महानुभावों को रसूल पैगाम्बर आदि कहा गया है वे हजरत मूसा, हजरत ईसा, हजरत मुहम्मद साहब आदि भी इसी श्रेणी में माने जा सकते हैं। इन लोगों ने भी अपने अपने समय में उस उस देश की स्थिति अनुसार मनुष्य जाति के सुधार के लिये अपनी शक्ति भर पूरा उद्योग किया था।

निदान मनुष्यों में जो ईश्वर के सच्चे भक्त, सिद्ध, योगी, महात्मा होते हैं; उनको कोई रसूल, पैगम्बर आदि और कोई अवतार मुक्त पुरुष आदि कहा करते हैं। वैदिक धर्मी समाज इनको ईश्वर भक्त और ईश्वरीय विभूति सम्पन्न मानता है।

—o—

पञ्चम अध्याय ।

तीर्थ–यात्रा ।

वैदिक धर्मी समाज यह मानता है कि तीर्थों [illegible] देशों में नहीं है [illegible] जातियों के स्थान होने से वे हमारे जातीय चिह्न (कौमी यादगारें) हैं । इनको धार्मिक संस्थाओं के केन्द्र बनाकर हिन्दू धर्म सुधार [illegible] तीर्थ [illegible] को पाप-मोचक और [illegible] मानते हैं और आर्य [illegible] इसका खण्डन करते हैं [illegible] कथन यह है कि केवल रास्ता नापने मात्रसे ही तो पाप-मोचन नहीं हो सकता; अलबत्ता, तीर्थ-यात्री वहां अधिक समय जप, तप, पूजा, पाठ, स्वाध्याय, कथा वार्ता, सत्सङ्ग आदि में लगायेगा तथा दान पुण्य धर्म कर्म भी करेगा तो इन सब शुभ कार्यों के फल में उसके पाप मोचन होकर स्वर्ग-प्राप्ति होगी ।

[illegible] तीर्थों को [illegible] है; किन्तु स्वयं श्री [illegible] की जन्म और मृत्यु और [illegible] (मथुरा) [illegible] तीर्थ [illegible] है [illegible] और वे देश को [illegible] शलम), [illegible] जाते हैं [illegible] लोग [illegible] देवी सी [illegible]

बौद्ध-स्थानों का दर्शन करने के लिये आते हैं, निदान सभी लोग अपने अपने तीर्थों की यात्रा करते हैं, तो फिर हम हिन्दू लोग भी क्यों न अपने बने [illegible] तीर्थों को जारी रक्खें।

अलबत्ता तीर्थों के पण्डा लोग बड़े मूर्ख और उजड्ड हैं, [illegible]

प्रथम अध्याय।

उपवास-व्रत।

[illegible]

निमित्त कथन किये गये फिर पुराणों में एकादशी प्रदोष आदि व्रत माने गये हैं। मुसलमानों का रोज़ा जो एक मास का व्रत है हमारे चान्द्रायण व्रतका बिगड़ा हुई नकल है। आज कल लोग व्रत वाले दिन खूब फलों के अतिरिक्त स्वादिष्ठ नाना प्रकार के भोज्य पदार्थ खाते पीते हैं—सिंघाड़े की पूरी अरुवी (घुइयां) की तरकारीआदि गरिष्ठ पदार्थों से तो व्रत का लाभ (पेट को हलका रखना) नष्ट हो जाता है इत्यादि बातों को सुधार कर लेना उचित है।

प्रश्न—सनातन धर्मी हिन्दू तथा मुसलमान लोग तो ऐसा मानते हैं कि इन उपवास व्रतों से स्वर्ग प्राप्ति हो जायगी आपका क्या मन्तव्य है?

उत्तर—उपवास द्वारा शरीर हलका रहेगा अतः मन जप, तप, पूजा, पाठ और स्वाध्याय आदि में अधिक लग सकेगा; इस लिये ऐसा करना स्वर्ग प्राप्ति का साधन ही है। किन्तु जो कोई केवल उपवासमात्र रहेगा और जप तप आदि में मन न लगावेगा वह कैसे स्वर्ग के निकट हो सकता है!!!

द्वितीय खण्ड—प्रामाणिक ग्रन्थ ।

प्रथम अध्याय

ईश्वरीय ज्ञान वेद ।

ईश्वर को मानने वाले सब मज़हब ईश्वरीय ज्ञान भण्डार का उसकी ओर से दिया जाना भी मानते हैं। विद्वान् संसार में कुरान, इञ्जील, तौरेत, ज़बूर, [illegible] और वेद ईश्वरीय (इलहामी) पुस्तकें मानी जाती हैं। अतः वेद सब से प्राचीन और श्रेष्ठ हैं, इस लिये हमारा समाज उन्हीं को सबसे ऊँचा आसन देता हुआ प्रमाणिक पुस्तकें मानेगा।

ईश्वरीय ज्ञान की परिभाषा ।

[illegible] विचार (ध्यान) करते [illegible] के हृदय में जो ज्ञान की लहर आती है, उसीको ईश्वरीय ज्ञान, इल्हाम, वही, आकाश-वाणी या श्रुति voice of the conscience इत्यादि कहा जाता है।

अर्थात् जो लोग समाधि, मिस्मेरिज़्म, हिप्नाटिज़्म आदि द्वारा मन को एकाग्र करके किसी विषय के विचार में निमग्न हो जाते हैं; उनके हृदय में व्यापक परब्रह्म परमात्मा

उनको विशेष ज्ञान दे देते हैं, यही ईश्वरीय ज्ञान है। ऐसा ज्ञान प्रत्येक काल में और देश में ईश्वर कृपा से किसी को भी हो सकता है और वह ज्ञानी ही मुलहिम, ऋषि, मुनि या महात्मा कहलाता है।

प्रश्न—इस परिभाषा अनुसार तो कुरान आदि भी इलहामी पुस्तकें मानी जा सकती हैं।

उत्तर—हां, जिस परमात्मा ने आर्यावर्त में विश्वामित्र, वसिष्ठ, वामदेव आदि ऋषि महर्षियों द्वारा वेदों का ज्ञान हमारे पूर्वजों को दिया था, उसी ने अरब देश के १४०० वर्ष पूर्व वहां के पूर्वजों को हज़रत मुहम्मद साहब द्वारा कुरान का ज्ञान दिया, इसी प्रकार अन्य महात्माओं द्वारा उन उन मतों को उस उस देश काल के लिये प्रकाशित कराया था। यह बात श्री मद्भगवद्गीता ४।७, ८ से सिद्ध है और वेद का भी प्रमाण मिलता है। जिसको हम विस्तार सहित अपनी बड़ी पुस्तक "वेदार्थ प्रकाश" में सुनायेंगे।

अब क्या कारण है कि लोग संसार में किसी पुस्तक को ईश्वरीय नहीं मानते; अगर वे कम से कम यह मानेंगे कि

ऐसी एक ऐतिहासिक घटना का वर्णन पाठक वाल्मीकि रामायण के आरम्भ में पढ़ सकते हैं, जहां वाल्मीकि जी के अन्तःकरण में [illegible] 'ब्रह्मा जी' ने प्रकट होकर केवल रामचन्द्र का सच्चा [illegible] करके रामायण रचने की प्रेरणा की थी।

[illegible] किन्तु [illegible] पुरुषों [illegible] [illegible]) [illegible] भी हमारे इस समाज के सभासद बन सकेंगे।

द्वितीय अध्याय

वेदों के ऋषि

इस प्रकार चार वेद पाये जाते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये चार नहीं वस्तुतः एक ही हैं। [illegible] भेद या रचना भेद से चार संहिताओं (जिल्दों) में [illegible] किये गये हैं। यथा—कर्मकाण्ड की प्रधानता वाला यजुर्वेद, उपासना वाला साम, ज्ञान वाला अथर्व तथा विज्ञान (स्तुति, परिभाषा आदि) युक्त ऋग्वेद है। [illegible] क्रम भी माना जाता है कि ऋचाओं या पद्य वाला ऋग्वेद, गद्य वाला यजुर्वेद, गायन वाला सामवेद और सब मिला जुला अथर्ववेद है।

साम वेद [illegible] केवल ७८ नये हैं, शेष सब [illegible] ऋग्वेद [illegible] इससे [illegible] भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है [illegible] जो गाये जाने योग्य [illegible] उनको पृथक् [illegible] इस प्रकार एक साम वेद बन गया।

और ऐसे अनेकों मन्त्र हैं जो चारों वेदों में पुनरुक्त हुए हैं, कई मन्त्र एक वेद में कई २ बार आये हैं, जिससे चारों वेदों में यद्यपि सब मिलकर २०४०० मन्त्र हैं, परन्तु यदि उनकी एक बार ही गणना की जाय तो प्रायः १० सहस्र से भी कम होंगे।

और महाभारत पुराणादि के सम्बन्ध में ब्योरेवार यह इतिहास लिखा हुआ है कि श्री वेदव्यास जी ने ही एक वेद को चार विभाग करके भविष्य सन्तानों के लिये सुगमता करदी।

प्रश्न—वेदों का प्रकाश किन ऋषियों द्वारा हुआ है।

उत्तर—वेदों की ऋचाओं या सूक्तों के आरम्भ में जो छन्द, देवता, ऋषि लिखे हैं, उन्हीं ऋषियों—विश्वामित्र, वसिष्ठ, वामदेव, जमदग्नि, अगस्त्य, अङ्गिरा आदि पुरुषों तथा लोपामुद्रा, घोषा, [illegible], अपाला आदि स्त्रियों द्वारा वेदमन्त्रों का प्रकाश संसार में हुआ है। उन ऋषियों की संख्या प्रायः पांच सौ से ६०० तक होगी।

प्रश्न—स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज चारों वेदों का ज्ञान ऋषियों अग्नि, वायु, रवि और अङ्गिरा द्वारा सृष्टि के आदि में प्रकाशित होना बतलाते हैं?

उत्तर—प्राचीन इतिहासों में कहीं अग्नि, वायु, रवि नाम के ऋषियों का होना नहीं पाया जाता, ये आग, हवा, सूर्य आकाशिक पदार्थ हैं। मनु आदि में जहां अग्नि आदि से वेदों को [illegible] जी का दुहना लिखा है वह आलङ्कारिक भाषा है।

[illegible] ऋषियों की [illegible] गाथायें [illegible] इति-
[illegible] हैं। [illegible] उनका नाम [illegible]
[illegible] और आकर्षण [illegible] है [illegible] ही वेदों
के ऋषि [illegible]

[illegible] केवल [illegible] है [illegible]
[illegible] या [illegible] नहीं है? [illegible] से
[illegible] थे? [illegible] आर्य समाज [illegible]
दोनों मानते हैं, फिर आप भी वैसा ही क्यों नहीं [illegible]

[illegible] यद्यपि [illegible] परन्तु [illegible]
को [illegible] से ऐसा नहीं प्रतीत [illegible] कि [illegible]
[illegible] वेद [illegible]
[illegible] कि [illegible] ऋषियों की [illegible] गाथायें [illegible] हैं [illegible]
[illegible] के [illegible] के [illegible] "[illegible]
[illegible]" [illegible] हैं [illegible] में [illegible]
भैंसों और दस हजार गायों [illegible]
[illegible] हैं।

[illegible] को [illegible] ने
त्याग दिया, फिर [illegible] से [illegible]
[illegible] सकीं, [illegible]
[illegible] के [illegible]
के (ऋषियों [illegible]) में [illegible] है।
[illegible] न [illegible]

देवता ने जो वैद्य हैं, उनको आरोग्य और ऐसे बलवान बना दिया कि वे बूढ़े होने पर भी अनेकों स्त्रियों के साथ सम्बन्ध कर सके। यह वृत्तान्त ऋग्वेद १। ११७। १० में आया है।

और आप आश्चर्य करेंगे कि श्री वामदेव ऋषि ऋग्वेद के ४ थे मण्डल के १८ वें सूक्त के १३ वें मन्त्रमें कहते हैं कि मैंने दुःख में पड़ जाने पर कुत्ते का मांस पकाया था इत्यादि। इन मन्त्रोंको तथा ऐसी और अनेकों गाथाओं को हम वेदार्थ प्रकाश में सुनायेंगे।

अब बतलाइये क्या इन वेद मन्त्रों का उक्त ऋषियों के जन्म से पूर्व विद्यमान रहना सम्भव है? अतः उन ऋषियों को आप चाहे मन्त्र द्रष्टा कहें या कुछ ही कहलें, वस्तुतः वे ही इनके आदि कर्त्ता हैं।

जो लोग संसार में किसी पुस्तक को ईश्वरीय नहीं मानते, उनके मत में जहां हज़रत मुहम्मद साहब कुरान के, प्रभु ईसा मसीह इञ्जील की शिक्षा के, महात्मा मूसा तौरेत के रचयिता (मुसन्नफ़) हैं, वहां महर्षि वशिष्ठ वामदेव आदि ऋग्वेद आदि के रचयिता हुए हैं। और जो लोग संसार में ईश्वरीय ज्ञान का आना मानते हैं-उनकी समझ में भी जहां कुरान खुदा की ओर से हजरत मुहम्मद साहब पर, इञ्जील की शिक्षा ईसा पर, तौरेत मूसा पर नाज़िल हुआ, वहां वेद उक्त वशिष्ठ वामदेव आदि प्रायः १००० ऋषियों पर नाज़िल हुए हैं। अभिप्राय दोनों का एक ही हो जाता है—कुछ भेद नहीं पड़ता, केवल वाग्जाल आडम्बर मात्र का भेद समझिये।

अतः उक्त दोनों पक्ष वाले जो मूल वेद मन्त्रों को शिरोधार्य करें हमारे समाज के सभासद बन सकेंगे।

प्रश्न—वेदों में इतिहास नहीं हैं। उपर्युक्त वेद वाक्यों के अर्थ आपने गलत कर लिये हैं?

उत्तर—हमने अर्थ गलत नहीं किया—सायणादि ने यह तात्पर्य दर्शाया है। वस्तुतः दो पक्ष सदाकाल से चले आते हैं—एक वेदों में इतिहासों का होना, दूसरा न होना। श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने अपना वेद भाष्य इस पक्ष की पुष्टि में रचा है कि वेदों में इतिहास न सिद्ध हो सकें किन्तु सायण, महीधर, उव्वट तथा यूरोपियन वैदिक विद्वान् गण—मॉक्समुलर, विल्सन, ग्रिफिथ, मैकडानल्ड आदि ने ऐतिहासिक पक्ष के आधार पर वेद भाष्य रचे हैं।

एक दूसरे को झूठा कह कर गाली गलौज करना तथा झगड़ा बढ़ाना वृथा है, क्योंकि दोनों पक्ष सदा काल से चले आते हैं और चले जायंगे। इस लिये यह बुद्धि मानों की बात है कि जिन लोगों को दयानन्द भाष्य से सन्तोष हो जाय वे वेदों में इतिहास न मानें, परन्तु जिनको उसमें त्रुटियाँ दृष्टि गोचर हों वे सायणादि की ही शरण पकड़ सकते हैं।

दयानन्द-भाष्य पर आरूढ़ रहने वाले महाशय गण आर्य समाजों द्वारा वेदों का प्रचार कर रहे हैं, किन्तु अब सायणादि के भाष्यों पर विश्वास रखने वालों को हमारे समाज में प्रविष्ट होकर संसार भर में धूम धाम के साथ वेदों का डङ्का पीटना उचित है।

तृतीय अध्याय

वेदों पर विचार।

प्रश्न—जब कि आपने यह मान लिया है कि वेदों के जैसे ही कुरान आदि भी इलहामी पुस्तकें हैं, तो फिर किसी मुसलमान ईसाई को अपने कुरान इञ्जील आदि छोड़कर वैदिक धर्मी बनने की क्या आवश्यकता है, वह क्यों शुद्धि कराये?

उत्तर—परमेश्वर ने उन अरब आदि देशों में उस २ समय (आज से १४०० या १९०० वर्षों पूर्व) के लोगों को उस उस देश कालानुसार उचित उपदेश करा दिया था, परन्तु कुरान न तो अरब देश की सीमा से बाहर वालों को शान्ति दे सकता था और न वह अब १४०० की पुरानी गाथा हो जाने से स्वयं वर्तमान अरब आदि देश वासियों के लिये भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उसका तुर्की राज्य में ही जहां समस्त संसार के मुसलमानों के सिरताज खलीफा साहब रहते थे बायकाट करा दिया गया है और जो नवीन कानून बना है वह सरासर कुरान से विरुद्ध है। इसी प्रकार वर्तमान संसार को इञ्जील तौरेत आदि से भी शान्ति नहीं मिल* रही है। जब कि वे न केवल भारत वासियों को, वरन्

---

*इञ्जील में शिक्षा तो यह थी कि जो कोई तेरे एक गाल पर तमांचा मारे तो उसके आगे दूसरा भी करदे, परन्तु इञ-

सारे संसार को अब भी उत्तम, लाभदायक, उन्नति कारक, लौकिक पारलौकिक अभ्युदय कारक शिक्षा दे रहे हैं। इस लिये समस्त मुसलमानों, ईसाइयों, यहूदियों आदि, को शुद्ध हो कर वैदिक-धर्मी ही बन जाना चाहिये।

प्रश्न—जिस प्रकार कुरान १३०० वर्ष पूर्व वालों और इञ्जील १९०० वर्ष पूर्व वालों के लिये थे, उसी प्रकार वेद भी सहस्रों लक्षों वर्षों पूर्व वाले मनुष्यों के लिये ठीक पथदर्शक रहे होंगे, किन्तु अब हम उनका पीछा क्यों पकड़े रहें ?

उत्तर—इस लिये पकड़े रहो कि वे अब भी नवीन से नवीन और ताज़ा से ताज़ा बने हुये हैं और उनकी शिक्षायें सदा सुहागिन सिद्ध हो रही हैं, जैसा कि यूरोपियन विद्वान गण भी स्वीकार कर रहे हैं (उनके कुछ वाक्य यहां पुस्तक में उद्धृत किये जायंगे)। फिर हमतो आपको वेदों के भी लकीर के फकीर नहीं बनाते। आप वेदों की जिस बात को इस समय के अनुकूल न पायें त्याग दें, और यह समझ लें कि वे आज से १०००० वर्षों पूर्व वालों के लिये उपयोगी रही होंगी। किन्तु देश काल बदल जाने से वह अब हमारे लिये

लैंड, जर्मनी, रूस, आस्ट्रिया आदि के ईसाई राजाओं ने उक्त शिक्षा को रद्दी, निकम्मी मान कर ठुकरा दिया और लातों का जवाब जूतों से दिया। उनका स्वत्व रक्षार्थ युद्ध करना देशानुकूल शिक्षा पर आरूढ होना था, अतः वे अपने बरतावों से इञ्जील छोड़कर वैदिक-धर्मी बन रहे हैं।

उपयोगी नहीं रह गई। इसी प्रकार अगर कोई बात वेद में न हो परन्तु जनता के लिये अच्छी, उपकारक, लाभदायक प्रतीत होती हो तो उसको वेदों में न होने पर भी आप ग्रहण करलें। ऐसे त्याग और ग्रहण की प्रणाली वैदिक-धर्म में सदा काल से चली आती है, तब ही तो एक दो चार नहीं वरन् बीस से अधिक स्मृतियां-धर्म शास्त्र (यथा मनु, याज्ञवल्क्य पाराशरी इत्यादि) इस समय पाई जाती हैं। फिर सब जानते हैं कि वेदों की बहु विवाह प्रणाली को बन्द करा दिया गया है, शिखा सूत्र तथा संन्यास लेने का विधान वेदों में न होने पर भी वे प्रचलित करा दिये गये हैं इत्यादि।

अतः मुसलमानों ईसाइयों के मज़हब ऐसी उदारता नहीं सिखलाते, वरन् वहां कुरान इञ्जीलके एक २ अक्षर तकसे इनकारी होने वालों को भी काफिर, पापी, लामज़हब, बेदीन (अधर्मी) आदि कहा* जाता है। इसलिये मुसलमानों ईसाइयों को कुरान इञ्जील आदि की इस सङ्कीर्णता युक्त जंजीर को तोड़ कर वैदिक-धर्म की उदारता (आज़ादी) और स्वतन्त्रता से लाभ उठाना चाहिये।

---

*यहां तक कि तिलक महाराज के रथी में कन्धा देने पर स्वर्ग-वासी मौलाना मुहम्मद अली साहब को "काफ़िर" बन जाने का फतवा दे दिया गया था।

चतुर्थ अध्याय।

वेदों की प्राचीनता तथा गौरव।

प्रश्न—हमें श्री महर्षि दयानन्द ने यह बतलाया है कि वेद का ज्ञान ईश्वर ने हमें सृष्टि के आरम्भ में दिया है। आप उनका वशिष्ठ विश्वामित्र आदि ऋषियों पर जो पीछे जन्मे हैं प्रकाशित होना मानकर क्या उक्त उत्तम शिक्षा का विरोध कर रहे हैं?

उत्तर—हम खुशी से ऐसा नहीं कर रहे हैं। वर्तमान समय में जो चार वेद संहितायें हमें मिली हैं (अगर इनके सिवाय कोई और वेदनाम के पुस्तक रहे हों जो लोप होगये हों तो भगवान जाने) उनको पढ़ने से यह बात कही जाती है। वे संसार उत्पत्ति से लाखों वर्ष पश्चात् बनाये गये हैं। कैसे क्यों? यह बातें हम बड़ी पुस्तक में भली प्रकार दर्शायेंगे।

प्रश्न—अच्छा आप वेदों को किस समय से मानते हैं।

उत्तर—वेदों का समय यूरोप के विद्वानों ने बहुत घटा घटा कर ईसा मसीह से पांच सहस्र वर्ष पूर्व काल तक का माना है। तिलक महाराज ने दस सहस्र तक और डाक्टर अविनाशचन्द्र दास जी ने २५ सहस्र वर्षों तक का सिद्ध किया है। स्वामी दयानन्द महाराज वेदों को सृष्टि के आदि काल से मानते हैं जिस लेखानुसार आज १९७२९४९०३१ वर्ष होते हैं।

वेदों का समय चाहे जितने वर्षों का हो, परन्तु प्रोफेसर मोक्षमूलर के शब्दों में वे संसार भर की सब पुस्तकों से पुराने अवश्य हैं। इससे और पुरानी कोई भी पुस्तक संस्कार की किसी भाषा में विद्यमान नहीं है, अतः हम वेदों का ठीक समय न जानते हुये उनको सर्व प्राचीन अवश्य मानते हैं।

वेदों का गौरव

वेदों की महिमा पर हम इस छोटी पुस्तिका में अधिक नहीं कह सकते, बड़ी पुस्तक में यह दर्शायेंगे कि किस प्रकार जन्म जन्मान्तर के अवैदिक-धर्मी महाशय गण भी वेदों का महत्व मानने पर विवश हो रहे हैं। यहां केवल इतना कहना पर्याप्त है कि श्री स्वामी दयानन्द महाराज वेदों को समस्त सत्य विद्याओं के भण्डार बतलाते हैं और श्री अरविन्द घोष जी कहते हैं कि "वेदों में सारा विज्ञान (साइन्स) भरा पड़ा है। बल्कि वर्तमान संसारके विज्ञान वेत्ताओं को वह सब बातें विज्ञान की ज्ञात नहीं हो पाई हैं जो वेदों में विद्यमान हैं। भविष्य खोज करने वाले विज्ञान वेत्ता यदि पुरुषार्थ करेंगे तो वेदों से लाभ उठायेंगे"।

वेद संस्कृत में तो हैं परन्तु इतने प्राचीन हैं कि लौकिक संस्कृत अधिकांशतः वैदिक संस्कृत से भिन्न हो गई है। यहां दृष्टान्त में हम केवल एक शब्द प्रस्तुत करते हैं। असुर शब्द आज कल की संस्कृत में राक्षस के अर्थ में आता है परन्तु वेद

में वह "देवता" वाचक था (पढ़ो ऋग्वेद १।२४।१४)

जांच पड़ताल करने से ज्ञात होता है कि संसार भर में जहाँ जहाँ जो कुछ भी ज्ञान फैला है वह सब वेदों से ही लेकर फैलाया गया है। जो लोग ऐसा नहीं मानते उन्हें भी कम से कम यह तो मानना ही पड़ेगा कि अन्यत्र कहीं भी वह ज्ञान वेदों से पीछे ही प्रादुर्भूत हुआ है। इस सचाई से किसी सत्य-प्रेमी ईसाई मुसलमान को इनकार नहीं होगा (जब वे ज्ञानमात्र की दृष्टि से देखेंगे) कि कुरान इञ्जील में जो कुछ भी थोड़ी बहुत उत्तमतायें (खूबियां) हैं, वह सब की सब उनसे सहस्रों वर्ष पूर्व वेदों तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में विद्यमान थीं, अतः वेदों की विद्यमानता में संसार को उन (कुरान आदि) की कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

पञ्चम अध्याय।

स्मृति और पुराण आदि।

वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों आदिके पश्चात् स्मृतियों, सूत्र ग्रन्थों, दर्शनों, इतिहासों तथा पुराण उपपुराणों आदिका नम्बर आता है।

वैदिक धर्मी समाज यह मानता है कि जिन १८ पुराण तथा १८ उपपुराणों को व्यास जी का रचा माना जाता है, वे

यद्यपि श्री वेद व्यास जी महाराज के ही रचे हुये नहीं सिद्ध हो रहे हैं; परन्तु तौ भी उनमें बहुतेरी बातें हमारे बड़े मतलब की हैं, इसलिए उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिये।

पुराणों की कुछ आलङ्कारिक बातों को लोग यथार्थ मान कर भ्रम में पड़ गये हैं, जैसे रावण के दश शिरों के होने का तात्पर्य केवल यह था कि वह चारों वेदों और छहों शास्त्रों का ज्ञाता था इत्यादि बातों को न समझ कर लोग भूल भुलैयां में पड़ गये। हमारा समाज ऐसे अलंकारों की छान-बीन करा कर यथार्थ ज्ञान को प्रकाशित करायेगा।

अलबत्ता पुराणों में कुछ ऐसी बातें भी लिखी हैं जिन से प्राचीन ऋषियों और देवताओं की निन्दा होती है और हमारे विपत्तियों को ठट्ठा मारने का अवसर प्राप्त होता है-जैसे विष्णु भगवान् के मत्थे यह दोष मढ़ना कि उन्होंने जालन्धर राक्षस की पतिव्रता स्त्री का पातिव्रत धर्म नष्ट करने के अभिप्राय से छल कर के उसके पति के जैसा अपना रूप बना कर उससे व्यभिचार किया इत्यादि। इनका कोई आधार वेदादि में न होने से इनको अवैदिक अतः अप्रमाणिक माना जायगा।

वैदिक धर्मी समाज कोशिश करेगा कि पुराणों की जितनी बातें उत्तम हों छांट ली जांय। यह कार्य भारी छानबीन (रिसर्च Research) का है अतः समय लगेगा।

देश काल बदल जाने से इस समय एक नवीन स्मृति (धर्म शास्त्र) के रचे जाने की भारी आवश्यकता है। क्योंकि अन्तिम पाराशरी स्मृति का समय भी एक दो सहस्र वर्षों का पुराना हो गया है, तब से संसार की दशा बहुत बदल गई है हमारा समाज इस कमी को पूरी करेगा।

तृतीय खण्ड-तत्व-ज्ञान।

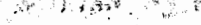

प्रथम अध्याय।

द्वैत अद्वैत वाद।

वेदान्त के भाष्यकारों में मतभेद चला आता है। स्वामी शङ्कराचार्य महाराज का अद्वैतवाद है तो श्री मध्वाचार्य्य जी का द्वैतवाद। श्री रामानुज जी विशिष्टाद्वैत और श्री वल्लभाचार्य्य जी शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन करते हैं। आर्य-समाज त्रैतवाद (अर्थात् ब्रह्म, जीव, प्रकृति तीनों को नित्य) मानता है। ये सब अपने अपने स्थान पर ठीक हैं, किसी को गलती पर नहीं कहा जा सकता। यह तत्व ज्ञान (फिलासफी) सम्बन्धी मतभेद की सूक्ष्म बातें हैं, जो साधारण लोगों की समझ में बहुत कम आती हैं, इस कारण वे इनको परस्पर विरोधी मान लिया करते हैं, परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है।

वेदों, उपनिषदों, दर्शनों और भगवद्गीता में द्वैत और अद्वैत अर्थात् दोनों सिद्धान्त स्पष्ट शब्दों में पाये जाते हैं; इसलिये वैदिक समाज यह मानता है कि शास्त्रों ने द्वैत और अद्वैत दोनों को अधिकार भेद से प्रतिपादन किया है। साधारण लोगों को द्वैत-वाद का उपदेश दिया गया कि तुम यह मान

कर परमेश्वर की उपासना करो कि वह मेरा मालिक प्रभु है; और मैं उसका सेवक, प्रजा या पुत्र हूं—अर्थात् मैं और वह दो हैं (द्वैत वाद)। और बड़े बड़े योगी, ज्ञानी, महात्मा जो अनन्य ईश्वर भक्त (वलीउल्लाह) या सिद्ध हो गये हैं और जिनका अन्तः करण परमात्मा की भक्ति (इश्क़ हक़ीक़ी) में इतना अधिक लौ लीन हो गया है कि उनको सिवाय उसके अपना पृथक् अस्तित्व दृष्टि-गोचर ही नहीं होता× उन परमेश्वर के प्यारे भक्तों को लक्ष्य करके हमारे शास्त्रों ने अद्वैत-वाद का उपदेश दिया है? अर्थात् यह कि मैं जीवात्मा उस परमात्मा में मग्न होकर उसी का रूप बन गया हूं (अद्वैतवाद) इस विषय में हम बीसों वाक्य वेदान्त, उपनिषदों और गीता से दोनों पक्ष की पुष्टि में पुस्तक "वेदार्थ-प्रकाश" में उद्धृत करेंगे।

विद्वान हमारे समाज में द्वैतवादी और अद्वैतवादी दोनों सभासद बन कर रह सकेंगे।

× जिस दशा का वर्णन किसी फ़ारसी शायर ने इन शब्दों में किया है:—

"मन तू शुदम, तू मन शुदी,
मन तन शुदम, तू जां शुदी।
ता कस न गोयद, बाद अज़ी,
मन दीगरम, तू दीगरी॥"

अर्थ—मैं तू हो गया, तू मैं हो गया। मैं शरीर बना तो तू जान (जीव) बन गया, अतः अब कोई ऐसा नहीं कह सकता कि मैं दूसरा हूं और तू दूसरा है।

द्वितीय अध्याय।

जीव और प्रकृति

द्वैत वादी महाशय गण जीव और प्रकृति को ब्रह्म से भिन्न मानते हैं और अद्वैत-वादी ब्रह्म से इन को अभिन्न अतः सब्रादि मानते हैं। यतः ये दोनों पक्ष शास्त्रानुकूल हैं इस लिये वैदिक समाज एक का पक्ष कर के दूसरे का विरोध नहीं कर सकता। हां हम वेदार्थ प्रकाश पुस्तक में दोनों पक्ष के प्रमाणों को सुनादेंगे। इस समय इतना मात्र कथन करना पुष्कल होगा कि जीवात्मा चेतन सत्ता है वह कर्म कर्ता और फल भोक्ता है। इसको कर्मानुसार अच्छी बुरी योनियां तब तक मिलती रहेंगी जब तक कि वह मुक्ति को न प्राप्त कर लेवे।

और प्रकृति जिसको माया और अविद्या भी कहा जाता है जड़ पदार्थ है—वह वर्तमान कार्य जगत् (पांच तत्व १-आकाश, २-वायु, ३-अग्नि, ४-जल, ५-पृथिवी) का कारण है। पिछले साइंस (विज्ञान) वेत्ताओं ने जो ६३ या और अधिक तत्त्व खोज निकाले हैं वे सब इसी प्रकृति के कार्य रूप में आ जाते हैं।

अतः जीव प्रकृति को ब्रह्म से भिन्न या अभिन्न मानने वाले दोनों पक्ष के लोग इस समाज में सभासद हो सकेंगे।

———

तृतीय अध्याय।

सृष्टि और प्रलय।

वेदादि ग्रंथों का निर्णय यह है कि परमेश्वर ने इस संसार को पैदा किया है वह सब का नियन्ता (हाकिम या शासक और प्रबन्ध कर्ता) है और संसार की आयु पूर्ण होने पर इस का प्रलय कर देता है। समय पर फिर सृष्टि रचता और प्रलय करता है; यह चक्र सदाकाल से चला आता और चला जायगा। इसका प्रमाण वह मन्त्र है जो सन्ध्या में अघमर्षण नाम से आता है—"सूर्याचन्द्रमसौ० (ऋग्वेद १०। १९०। ३)

प्रश्न—क्या परमेश्वर ने इस संसार को अभाव से भाव में उत्पन्न कर दिया है? जैसा कि मुसलमान ईसाई मानते हैं या भाव से भाव में जैसा कि साइंस कहता है?

उत्तर—हम वेदादि से दोनों पक्ष की पुष्टि में प्रमाण उपस्थित करेंगे।

प्रश्न—आखिर इन दोनों में से किस को ठीक माना जाय?

उत्तर—जब आप हमारे प्रमाणों को वेदार्थ प्रकाश पुस्तक में पढ़ेंगे तब इस प्रश्न का उत्तर भी सुन लेंगे। इस छोटी पुस्तिका में हम विस्तार भय से और अधिक नहीं कथन कर सकते।

चतुर्थ अध्याय ।

आवागमन ।

हम जीवात्माएं कर्म करते जाते हैं और उनके फल में सुख दुःख भोगते जाते हैं। जिन कर्मों का फल इस जीवन में हम नहीं पा सकते, उनका फल भोगने के लिये हमें दूसरा शरीर मिलेगा, इसी प्रकार इस जन्म से पूर्व हमारे सैकड़ों हज़ारों जन्म हो चुके हैं। इस चक्र को आवागमन या पुनर्जन्म कहा जाता है।

प्रश्न—क्या मनुष्य का जीवात्मा दूसरे जन्म में कुत्ता, बिल्ली, गाय, घोड़ा, आदि पशुओं की योनियों में हो जाता है।

उत्तर—हां, पशु, पक्षी, कीट पतङ्ग और वृक्ष तक की योनियों में भी जाता है।

प्रश्न—मुसलमान, ईसाई लोग तभी तो ठट्ठा किया करते हैं कि हिन्दू धर्म कैसा वाहियात है, जहां आदमियों को कुत्ता, बिल्ली, सांप, बिच्छु आदि बनना पड़ता है?

उत्तर—उन ठट्ठा करने वालों से पूछो कि वे स्वयम् क्या मानते हैं?

प्रश्न—वे इस वर्तमान शरीर से पूर्व जीवात्मा का अस्तित्व ही नहीं मानते। उनका कथन है कि खुदा हमल में रूह (जीवात्मा) को पैदा कर देता है। इस लिये भूत काल के

आवागमन की आवश्यकता न रह गई, और भविष्य का विवरण इस प्रकार है कि शरीरान्त होने पर वह पाप पुण्य के अनुसार दण्ड और इनाम पायेगा—नरक या स्वर्ग में प्रवेश कर सकेगा।

उत्तर—ऐसा मन्तव्य रखने वालों पर जो भारी आक्षेप किये जाते हैं, उनका वे कोई युक्ति-युक्त, सन्तोष जनक उत्तर नहीं दे सकते, लो सुनो :—

पूर्व काल का आवागमन उड़ा देने के लिये जो यह मान लिया गया कि जीवात्मा को खुदा अभाव से भाव में उत्पन्न कर देता है, यह विद्या बुद्धि और विज्ञान से सर्वथा विरुद्ध है। इसके अतिरिक्त हम पूंछते हैं कि जो बालक जन्म से अन्धा, लूला, लंगड़ा आदि पैदा होता है उसको वह दण्ड किस अपराध के बदले में दिया जाता है। मुसलमान ईसाई इसका उत्तर केवल यह दिया करते हैं कि यह खुदा की मरज़ी है, वह जिसको चाहे जैसा सुखी दुःखी पैदा कर देवे परन्तु फिर भी हमारा इन पर यह प्रश्न होता है कि ऐसा मानने से तो खुदा पर बे इनसाफी का दोष आजाता है। आवागमन का सिद्धान्त मानने में यह बड़ी उत्तमता है कि परमेश्वर पर अन्यायकारी होने आदि का कोई दोष नहीं लग सकता। इस लिये आवागमन का ही वैदिक सिद्धान्त मानने योग्य है। इन मुसलमानों से कहो कि वे भी हमारे उत्तम, शान्तिदायक, बुद्धि अनुकूल बात को स्वीकार करके वैदिक धर्मी बन जायं।

अच्छा अब मरने के पश्चात् का वृत्तान्त सुनो—यह तो सन्तोष जनक वार्ता है कि मुसलमान ईसाई शरीरान्त पर जीवात्मा का भी अन्त नहीं मानते (वे जब कि जीवात्मा का आदि—जन्म मानते हैं तो अन्त भी मानना न्यायानुकूल होता) वरन् शरीर के मर जाने पर भी इनको विद्यमानता मानते हैं। परन्तु इन बेचारों (जीवों) की इसलाम ईसाइयत ने ऐसी फ़ज़ीहत की है कि जिस का कोई हद्दो हिसाब नहीं आवागमन को तो वे मानते नहीं और प्रलय (कयामत) को अभी लाखों वर्ष बाकी हैं। अब प्रश्न यह आ गया कि कयामत तक वे जीवात्मायें कहां रहेंगी और क्या करेंगी ? इसपर वे यह मानते हैं कि जीवात्मायें उन कबरों में ही बैठी रहा करेंगी।

कोई कब्र के गड़े मुर्दे को निकाल कर देखे तो ज्ञात होगा कि कितना असह्य दुर्गन्ध और कीड़े मकोड़े सूड़े आदि उसमें पड़ जाते हैं। ऐसी बुरी दशा में वह बेचारा (जीवात्मा) पड़ा रहता होगा, क्या यह नरक से कमती कष्टदायक है ? फिर वहां का निवास उसका कुछ थोड़े समय का भी नहीं, बल्कि लाखों वर्षों तक की वह हवालात होगी। मानुषी जीवन आज कल अधिक से अधिक १०० वर्षों का है, अतः सौ या उससे न्यून वर्षों में जो कर्म किये गये उनके फल प्राप्ति का निर्णय (जो कयामत में होगा) सुनने के लिये इन जीवात्माओं को लाखों वर्षों हवालात में रहना पड़ेगा !! यह क्या

[illegible] होसकती है। अब अगर हम भी इनकी तरह ऐसी [illegible] बातों पर ठट्ठा उड़ायें तो कैसा हो ?

[illegible] लिये हम मौलवी पादरी साहबों से कह दो कि आवागमन [illegible] शिक्षा को स्वीकार करलें कि जिसमें उक्त प्रकार की बुद्धि-विरुद्ध मन्तव्यों से छुटकारा होजाय।

पञ्चम अध्याय ।

भाग्य और पुरुषार्थ ।

कर्म का फल मिलने के सिद्धान्त पर भाग्य (तकदीर या क़िसमत) और पुरुषार्थ (तदबीर) का प्रश्न आ जाता है। पूर्व जन्म के कर्मों (तदबीरों) से ही हमारा प्रारब्ध या भाग्य बना है।

भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनों में से कौन बढ़ कर है ? इस प्रश्न पर मत भेद है, परन्तु यतः भाग्य हमारे ही पूर्व जन्म के किये कर्मों से बनाया गया है, इस लिये कर्म (पुरुषार्थ) की श्रेष्ठता माननी पड़ेगी। वैदिक-समाज भाग्य से पुरुषार्थ को बढ़ कर मानता है।

प्रश्न—मुसलमान ईसाई लोग तक़दीर के क़ायल हैं कि खुदा ने जो चाहा वह क़िसमत (भाग्य) में लिख दिया, हमें इनकी यह बात अच्छी जान पड़ती है ?

उत्तर—वे लोग इस शरीर के पूर्व जीवात्मा का अस्तित्व नहीं मानते, इस कारण उन्हें यही मानने के लिये विवश होना पड़ता है कि जब खुदा ने जीवात्मा को पैदा किया तभी उसकी तकदीर या किस्मत लिख दी—उसके पूर्व जन्म न मानने वाले पूर्व कर्म भी नहीं मान सकते, फिर सिवाय इसके और क्या मानें कि खुदा बिना किसी पाप पुण्य के ही सुख दुःख उसके भाग्य में लिख देता है। परन्तु इस मन माने मन्तव्य पर जो आक्षेप होते हैं उनके उत्तर वे लोग बिलकुल नहीं दे सकते।

षष्ठम अध्याय।

मुक्ति।

मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति प्राप्ति है। मुक्ति का शब्दार्थ छूट जाना या आज़ाद हो जाना है। हम लोग इस शरीर रूपी बन्धन में फंसे हैं इससे छूट जाना मुक्ति प्राप्ति है। कैसे छूटें? इस प्रश्न का उत्तर शास्त्रों में यह आया है कि कर्म, उपासना, ज्ञान के द्वारा मुक्ति मिलेगी चार आश्रम इसी के साधन हैं।

इस बारे में सनातन धर्म और आर्य्य-समाज का कोई मत-भेद नहीं है और वैदिक समाज भी ऐसा ही मानेगा। अत

यतो मुक्ति से पुनरावृत्ति (वापसी) में मतभेद है। आर्य्य-समाज नियत समय के पश्चात् मुक्ति से जीवात्मा का वापस आना मानता है, सनातनी नहीं मानते। अतः वैदिक समाज दोनों सिद्धान्तों को वेदानुकूल मानता है इस कारण दोनों पक्ष को ठीक मानेगा। हम दोनों पक्ष की युक्तियें प्रमाणों को बड़ी पुस्तक में रख देंगे।

चतुर्थ खण्ड।

प्रथम अध्याय।

कर्त्तव्य-कर्म।

मुक्ति के साधनों में कर्म, उपासना, ज्ञान माने गये हैं। कर्म से अभिप्राय संसार के सब प्रकार के कार्यों से है।

चारों वर्ण के कर्तव्य (फर्ज़ या ड्यूटी) जो संसार की उन्नति के लिए हैं कर्म-काण्ड में माने जाते हैं। बालक के जन्म वरन् गर्भाधान से मृत्यु पर्यन्त सोलह संस्कार होते हैं वे सब कर्मकाण्ड में गिनाये गये हैं। प्रति दिन पाँच महायज्ञ करने का विधान है जिनमें से पहिला ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या-वन्दन) तो उपासना में आया है, शेष चार अर्थात् देव यज्ञ (हवन करना), पितृ यज्ञ (पितृ श्राद्ध तर्पण करना), भूत यज्ञ (बलि वैश्व कर्म अर्थात् कुत्ते, कौवे, गाय आदि को भोजन का कुछ भाग दे देना), नृयज्ञ (अतिथि सत्कार) की गणना कर्मकांड में है।

वैदिक समाज इनको मानता है, अलबत्ता देश काला-नुसार कुछ आवश्यक परिवर्तन करना उचित समझता है। जैसे आज कल निर्धनता के कारण जो लोग प्रतिदिन हवन न

कर सकें, क्योंकि घृत आदि बहुत मँहगे हो गये हैं, वे कभी कभी कर लिया करें इत्यादि।

द्वितीय अध्याय।

शिखा-सूत्र।

शिर पर चोटी रखना और यज्ञोपवीत धारण करना हिन्दू धर्म के चिन्ह हैं। शास्त्रों में यह कहा गया है कि हम पर जन्म लेते ही तीन ऋण रहा करते हैं—ऋषि ऋण, पितृ ऋण, देव ऋण, इनके लिये शिखा (चोटी), सूत्र (यज्ञोपवीत) और मेखला (कधनी) ये तीन चिन्ह माने गये हैं।

विद्याध्ययन से ऋषि ऋण निवारण हो जाता है जिसके लिए ब्रह्मचर्य आश्रम आवश्यक है। सन्तानोत्पत्ति तथा माता पितादि की सेवा और श्राद्ध तर्पण आदि से पितृ ऋण पूरा होगा, जिसके लिए गृहस्थाश्रम करना चाहिये। हवन, यज्ञ, परोपकार आदि द्वारा देव ऋण से उरिण हो सकते हैं जिसके लिए वानप्रस्थ आश्रम दरकार है (देवऋण का अधिकांश भाग गृहस्थाश्रम में भी चुकाया जाता है)।

इन तीनों आश्रमों के पश्चात् जब चौथा संन्यास आश्रम ग्रहण किया जाता है, तो इन चिह्नों को पृथक कर दिया जाता है क्योंकि अब वह (संन्यासी) किसी बन्धन में नहीं

रह गया। अतः संन्यास लेते समय शिखा काट दी जाती है, यज्ञोपवीत उतार दिया जाता और मेखला [illegible] दी जाती है और तब उसको संन्यासाश्रम का चिह्न काषाय वस्त्र (भगुवा बाना) दे दिया जाता है।

प्रश्न—आज कल के अंग्रेज़ी पढ़े लोग शिखा सूत्र की परवाह नहीं करते। पुरुषों में कई सज्जन गण भी शिखा नहीं रखते, इत्यादि बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि शिखा [illegible] आवश्यक नहीं है?

उत्तर—आवश्यक तो है, वैसे धर्म कर्म की परवाह न करने वालों को क्या कहा जाय। हम हिन्दुओं का शिखा-सूत्र वैसा ही है जैसा कि मुसलमानों में सुन्नत (खतना) या ईसाइयों का बपतिस्मा। कभी नहीं सुना गया कि किसी मुसलमान ने अपने बच्चों का खतना कराने से इनकार किया हो, या किसी ईसाई ने बपतिस्मा का तिरस्कार किया हो। परन्तु यह हिन्दू जाति ही आज दिन ऐसी पतित अवस्था को प्राप्त हो गई है, कि उसे किसी भी धर्म कर्म की परवाह नहीं रह गई। मुसलमानों के राज्यकाल में असंख्य हिन्दुओं ने [illegible] [illegible] दिया परन्तु चोटी नहीं कटाया। लेकिन उन्हीं की सन्तानें आज कल ऐसी धर्म हीन, स्वतन्त्र, मनमानी करने वाली बन गई हैं, कि दूसरे मज़हब वाले इनसे हज़ार दर्जे अच्छे धर्मात्मा (अपने मज़हब के अनुयायी) सिद्ध हो रहे हैं। क्या ही अच्छा होता कि ये हिन्दू सज्जन गण कम से

...दूसरों से ही शिक्षा ग्रहण करके पक्के हिन्दू धर्मी बन जाते हैं।

तृतीय अध्याय।

चार आश्रम

मनुष्य जीवन को हमारे ऋषियों ने चार भागों में विभाजित किया है। सौ वर्ष की साधारण आयु है इसलिये प्रत्येक को २५ वर्ष दिये गये हैं। लड़का अपनी २५ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी रहे, ५० तक गृहस्थी, ७५ तक वानप्रस्थी पश्चात् संन्यासी।

इस सम्बन्ध में सनातन धर्म और आर्य-समाज का कोई मतभेद नहीं है। वैदिक समाज भी इसको ठीक ही मानता है। परन्तु हमारा यह कथन है कि इस जमाने में आयु १०० वर्ष तक तो बहुत कम लोगों की पहुँच पाती है इसलिये हमें औसत पर आश्रमों का परिवर्तन करना चाहिये। अर्थात् ८० वर्षों के न्यून आयु में ही चारों आश्रम ग्रहण कर लेना चाहिये। किन्तु गृहस्थी होते हुए भी ब्रह्मचर्य से सीधे संन्यासाश्रम में प्रवेश किया जा सकता है—श्री स्वामी शङ्कराचार्य महाराज पूर्वकाल में और स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज इस जमाने में इसके दृष्टान्त हैं।

चारों आश्रमों में खराबियाँ आ गई हैं—उनका सुधार करना हमारे इस समाज का कर्त्तव्य होगा। खास कर यह कि जो ५२ लाख साधु नामधारी हैं परन्तु वस्तुतः अपने कार्यों से साधु (वानप्रस्थी, संन्यासी) नहीं सिद्ध हो रहे हैं उनको गृहस्थाश्रम में वापस जाने की प्रेरणा की जाय। या इनको विधि पूर्वक साधु बन जाने के लिये वैसे वैसे साधन उपस्थित कराये जायं; अर्थात् स्थान स्थान पर साधु आश्रम खोलकर उनको धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ने और धर्मोपदेशक बन कर काम करने में लगाया जाय इत्यादि।

कई लोग ऐसा समझते हैं कि संन्यास ग्रहण करना केवल ब्राह्मण का धर्म है, परन्तु ऐसा नहीं है, महाभारत में यह वर्णन आता है कि विदुर जी ने शूद्रा के पुत्र (अतएव ज्ञाता चाण्डाल) होकर भी संन्यास ग्रहण किया था। धृतराष्ट्र वानप्रस्थी बने थे और अधिक जीवित रहते तो संन्यास भी ग्रहण करते। श्री दशरथ महाराज भी रामचन्द्र जी को राज्य देकर संन्यास लेने ही वाले थे और अनेकों क्षत्रिय राजाओं के संन्यास ग्रहण करने का वर्णन पुराणों में मिलता है। इस कलियुग में भी राजा भर्तृहरि जी ने संन्यास ग्रहण किया था इत्यादि। [illegible]

[illegible]

चतुर्थ अध्याय।

गृहस्थाश्रम।

ब्रह्मचारी रहता हुआ विद्याध्ययन करे, पश्चात् विवाह करा कर गृहस्थी बने। विवाह किस आयु में होना चाहिये? हमारे सनातन धर्मी भाई आठ, दस वर्ष की कन्या का विवाह करना धर्म मानते हैं और आर्य्य-समाज १६ वर्ष से कम आयु की कन्या तथा २५ से कम वाले पुरुष का विवाह मना करता है।

वैदिक धर्मी समाज का भी यही निर्णय रहेगा क्योंकि वेदादि के प्रमाण और प्राचीन इतिहास से यही सिद्ध हो रहा है कि युवावस्था प्राप्त हो जाने पर विवाह हुआ करता था। अब शारदा कानून के पास हो जाने पर गवर्नमेंट को धन्यवाद है कि १४ और १८ से पूर्व विवाह कराने पर दण्ड का विधान कर दिया गया है। हम लोग ५० वर्षों से बाल-विवाह खण्डन करते करते थक गये परन्तु इन लोगों ने हमारी एक न सुनी। अब राज्य दण्ड के भय से स्वयं ही बाल-विवाह बन्द करायेंगे।

प्रश्न—क्या बहु-विवाह उचित है—अर्थात् एक समय में एक पुरुष की दो या अधिक स्त्रियाँ हो सकती हैं?

उत्तर—आर्य्य-समाज तो बहु विवाह को वेद विरुद्ध मानता है परन्तु वेदों में ऐसे अनेकों प्रमाण मौजूद हैं जो बहु

विवाह विधायक हैं और [illegible] (इतिहास भी यह कहता है जैसे कि दशरथ जी की तीन रानियाँ और याज्ञवल्क्य ऋषि की भी दो स्त्रियाँ थीं। किन्तु यह कार्य हानिकारक सिद्ध हो रहा है। सपतों के झगड़े, फिर उनकी सन्तानों की लड़ाइयाँ संसार में इतनी अधिक हैं कि इस [illegible] विवाह विषय वृत्तान्तों के सर्वथा बन्द करा देने में ही कल्याण है।

यूरोप वालों में तो ऐसा कानून बन गया है कि कोई पुरुष एक समय में दो स्त्रियाँ नहीं रख सकता। यदि भारत में भी ऐसा ही कानून बन जाय तो परमात्मा की बड़ी कृपा हो।

प्रश्न—क्या विधवा-विवाह होना चाहिये?

उत्तर—[illegible] हमारे [illegible] भाई [illegible] विधवा [illegible] बैठे हैं, परन्तु [illegible] प्रकाशित की गई हैं, जिनमें [illegible] सिद्ध किया गया है। कुछ प्रमाण [illegible] पुस्तक में [illegible]

सनातन धर्म विधवा-विवाह के सर्वथा विरोधी [illegible] आर्यसमाज केवल बाल विधवा (अक्षतयोनि) का [illegible] मानती है, लेकिन वैदिक [illegible] विधवाओं का पुनर्विवाह [illegible] हैं [illegible] हैं और [illegible] विधवाओं का [illegible]

[illegible] चाहें तो पुनर्विवाह करा दिया जाया करे। जब कि [illegible] जो साठ साठ वर्ष की जैसी आयु तक विवाह पर विवाह करते चले आते हैं, तो बेचारी स्त्रियों ने क्या [illegible] किया है कि उनको भी यह स्वतन्त्रता न दे दी जाय कि [illegible] आयु तक चाहें अपना पुनर्विवाह कराती चली जायं।

[illegible] क्या नियोग की प्रथा उचित है ?

उत्तर—स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज ने तो यही [illegible] किया था कि जो विधवायें [illegible] पति से समागम [illegible] हों उनका पुनर्विवाह नहीं वरन् नियोग कराया जाय, [illegible] आज तक किसी आर्य्यसमाजी ने नियोग नहीं [illegible] करने को तैयार है। इसलिये [illegible] [illegible] नहीं हो सकता।

[illegible] प्राचीन काल में था, परन्तु [illegible] [illegible] ने इस प्रथा को बन्द करा दिया था, [illegible] दयानन्द [illegible] गड़े मुर्दे को उखाड़ना चाहा [illegible]। फिर [illegible] कि विधवा के पुनर्विवाह का [illegible] दिया जाता है तो नियोग की आवश्यकता भी नहीं रह जाती।

[illegible] क्यों लोग विधवा विवाह के [illegible] [illegible] विधवाओं के पुनर्विवाह [illegible] तो [illegible] हैं वे तो यह बात [illegible] कर रहे [illegible]

विरोधी बन जायेंगे और उनकी कोपाग्नि भड़क उठेगी। इन बातों के विचार से आपको ऐसा नियम अपने समाज में नहीं रखना चाहिये।

उत्तर—वे लोग विरोध तो करेंगे, परन्तु जब से सती का रिवाज गवर्नमेंट ने कानून द्वारा रोक दिया है तब से विधवाओं की संख्या बढ़ती ही चली गई है और विवाह की इच्छुक विधवाओं को ईसाई लोग ईसाइन बनाने और मुसलमान लोग मुसलमानिन बनाने का पूरा बन्दोबस्त कर रहे हैं और वे लोग इसमें सफलता भी पा रहे हैं। फिर जो विधवायें हिन्दू बनी रहती हैं वे बेचारी अगर शुद्ध पवित्र रहना भी चाहें तो नहीं रहने पातीं। दुष्ट पुरुष स्वयं उनके घर वाले सम्बन्धी देवर, ज्येष्ठ, बहनोई आदि उनको व्यभिचारिणी बना डालते हैं और गर्भ ठहरने पर गर्भपात और भ्रूण हत्या कराया करते हैं गवर्नमेंट की रिपोर्ट से यह ज्ञात हुआ है कि तीस लाख भ्रूण प्रति वर्ष भारत में मार डाले जाते हैं त्राहिमाम त्राहिमाम !!! यह महान पाप (बालकों का हनन करना भ्रूण-हत्या सबसे बड़ा पाप माना गया है) हिन्दू जाति के माथे व्यर्थ ही विधवा विवाह रोकने के कारण पड़ रहा है। इसलिये ये लाखों भोले भाले सनातन धर्मी भाइयों के भारी से भारी विरोध की कोई परवाह नहीं की जानी चाहिये, क्योंकि हम जाति की भलाई में लगे हुए हैं।

प्रश्न—क्या सन्तानों वाली विधवा के पुनर्विवाह पर आप कोई प्रमाण बतला सकते हैं।

उत्तर—और प्रमाण तो बड़ी पुस्तक में लिखे जायगे, किन्तु अभी हम आपको एक ज़बरदस्त ऐतिहासिक प्रमाण सुनाये देते हैं:—

श्री रामचन्द्र जी ने जब बालि को मार डाला तो उसकी स्त्री तारा अपने देवर सुग्रीव के पास बैठ गई थी, यद्यपि इस की सन्तान "अङ्गद" जो उस समय लड़का भी नहीं बल्कि जवान हो चुका था विद्यमान थी।

प्रश्न—वे सुग्रीव आदि बानर जाति या बन मानुस जङ्गली असभ्य लोग थे, इनका अनुकरण करना आर्यों का काम नहीं हो सकता।

उत्तर—वे सुग्रीव हनुमान आदि राम भक्त हुये और स्वयं रामचन्द्र जी ने उनकी भारी प्रशंसा की है, इसलिये इस ज़माने के लोग भला उन जैसे शुद्ध पवित्र तो बन लें—किन्तु अपने को उनसे बढ़ कर मान लेना आप लोगों का केवल घमण्ड मात्र है। इसके सिवाय, यदि इनको नीच कोटि के मनुष्य भी मान लिया जाय तो भी इनका अनुकरण करने में कोई हरज नहीं है। अच्छी विधवाओं के ईसाइन मुसलमानिन या वेश्या बन जाने आदि से तो यह अच्छा ही है कि नीच कोटि के मनुष्यों का अनुकरण कराया जाय।

प्रश्न—मुसलमानों ईसाइयों में तिलाक (पति या पत्नी

[illegible]) [illegible]
लोग हिन्दुओं में भी इस प्रथा को जारी करना [illegible]
[illegible] कहते हैं ?

उत्तर—यह प्रणाली प्राचीन आर्यों में नहीं थी [illegible] किसी ग्रन्थ में एक भी दृष्टान्त इस प्रकार का नहीं पाया जाता। परन्तु तो भी देशकाल बदल जाने से संसार में भारी परिवर्तन हो गया है इस लिये हमारी समझ में [illegible] लोगों को विशेष दशाओं में आपद्धर्म मानकर इस प्रथा को ग्रहण करना उचित है। ऐसे ऐसे दृष्टान्त [illegible] हैं जैसा कि एक क्लीब (नपुंसक) व्यक्ति ने धोखा देकर अपना विवाह [illegible] लिया, जब उसकी वधू पर यह वृत्तान्त प्रगट हुआ तो [illegible] दुःखी होना स्वाभाविक ही था एक साल तक बेचारी कष्ट झेलती रही आखिर न रहा गया और यह वृत्तान्त उसने विवाह कराने वालों पर प्रगट किया जिन्होंने उस पुरुष को डाँट कर त्याग दिला कर उस स्त्री का अन्य पुरुष के साथ विवाह सम्बन्ध करा दिया (यह वृत्तान्त सहारनपुर आर्य-समाज के मन्त्री जी ने मुझको सन् १८२७ में सुनाया था)। और हिन्दू जाति अब इतनी पतित बन गई है जिसमें उक्त प्रकार के कुछ स्वार्थी लोग पैदा होने लगे हैं तो हमें विवशतः [illegible] की प्रथा के द्वारा ऐसे दुष्टों का इलाज करना ही पड़ेगा। भला विचार कीजिये कि अगर वह व्यक्ति पुरुषत्व हीन [illegible] था तो उस [illegible] को विवाह करा कर एक

लली [illegible] का जन्म [illegible] कौन सी आपत्ति पड़ी थी [illegible] इत्यादि।

हम बड़ी पुस्तक में इस विषय पर अधिक प्रकाश डालेंगे। हर्ष की बात है कि बड़ौदा राज्य ने एक ऐसा कानून हाल में [illegible] करा कर भारी उपकार का यश प्राप्त कर लिया है।

पञ्चम अध्याय ।

चार वर्ण ।

[illegible] काल से चार-वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चले आते हैं। सनातन धर्म सभा जन्म से, और आर्य-समाज गुण कर्म से इनकी श्रेष्ठता मानता है, वैदिक समाज वर्ण की श्रेष्ठता जन्म और गुण कर्म दोनों के आधार पर मानेगा। जैसे ब्राह्मण माता पिता से जो जन्मा हो और वह ब्राह्मणत्व के कर्म पठन पाठन आदि में प्रवृत्त भी हो, तबही पूरा पूरा ब्राह्मण माना जायगा।

वैदिक धर्मी समाज यह भी मानता है कि वर्ण परिवर्तन उन्नति अवनति भी हो सकती है। प्राचीन काल में ऐसा होता रहा है—प्रमाण तथा इतिहास सुनाये जायेंगे।

शादी विवाह सम्बन्ध भी भिन्न वर्ण वालों में होना अनुचित नहीं है। प्राचीन इतिहास साक्षी है कि ब्राह्मण क्षत्रियों में परस्पर वर कन्याओं के विवाह हुआ करते थे। महाराजा

दशरथ की कन्या शान्ता का विवाह ब्राह्मण ऋष्यशृङ्गी ऋषि के साथ हुआ था और शुक्राचार्य्य ब्राह्मण की कन्या देवयानी का विवाह क्षत्रिय राजा ययाति के साथ होना भागवत में लिखा है इत्यादि।

आर्य्य-समाज ने जो जात पांत तोड़क मण्डल लाहौर या आर्य्य भ्रातृ सभा लखनऊ इत्यादि की स्थापना की है, उनकी पुष्टि वैदिक समाज भी करेगा। ज़माने ने उन्नति कर ली है, इस लिये हमारी हिन्दू जाति अब अन्यों से पीछे नहीं रह सकती। कई हिन्दुओं ने अहिन्दु (यूरोपियन, अमेरिकन) कन्याओं के साथ शुद्ध कराकर विवाह कराया है—जैसे कि भूत पूर्व महाराजा इन्दौर का मिस मिलर को शर्मिष्ठा देवी बन जाने पर विवाह करा लेना इत्यादि को वैदिक-समाज पूरी शक्ति के साथ पुष्टि करेगा।

समुद्र पार देश देशान्तरों में जाकर वापस आने वाले हिन्दू सज्जनों को जाति बाह्य कराना भारी भूल है। इनको तो और अधिक मान सत्कार सहित जाति में रक्खा जाना चाहिये क्योंकि वे लोग देश, जाति, धर्म के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। तुम इनका तिरस्कार करोगे तो वे ईसाई मुसलमान बन कर हिन्दू जाति से बाहर निकल जायेंगे, इस भारी नुकसान के तुम जिम्मेवार बनोगे।

षष्ठम अध्याय।

शूद्रों को वेदाधिकार।

सनातन धर्म सभा शूद्रों को वेद पढ़ने या जप तप आदि का अधिकार नहीं देता। वह मानता है कि यदि शूद्र वेद पढ़े तो उसकी जिह्वा काट डाली जाय और यदि वह वेद वाक्य को सुन लेवे तो उसके कान में सीसा पिघला दिया जाय, यह गौतम स्मृति का वचन है जिसको श्री स्वामी शङ्कराचार्य्य महाराज ने अपने वेदान्त भाष्य में उद्धृत करके पुष्टि कर दिया था और आज कल की सनातनी पण्डित मण्डली भी अब तक इसे दुहराये चली जाती है (पढ़ो पण्डित अखिलानन्द जी की पुस्तक वेदत्रयी आलोचना)।

परन्तु इस ज़माने में स्कूल कालिज में जो चाहे संस्कृत सीख कर वेदों को स्वयम् पढ़ सकता है; फिर यूरोप-निवासी जिन को सनातन धर्मी लोग म्लेच्छ माना करते हैं, वेदों के बड़े बड़े विद्वान् बन रहे हैं इत्यादि कारणों से हमारे सनातन धर्मी भाइयों को अपनी राय बदलनी पड़ेगी। अस्तु वैदिक समाज यह मानता है कि मनुष्य-मात्र को अधिकार है कि जो वेदों को पढ़ सकता हो पढ़े और जो सुन सकता हो सुने और लाभ प्राप्त करे।

सप्तम अध्याय।

अन्त्यज-उद्धार।

हिन्दुओं में जो भङ्गी, चमार, डोम, ढेढ़ आदि जातियां हैं इनकी बहुत भारी दुर्दशा है। ब्राह्मण आदि ने अपने को उच्च और इनको नीच बरन् महा नीच प्रख्यात किया है, और इन से इतनी अधिक घृणा की जाती है कि अन्य जाति वाले (यूरोपियन आदि) इन पर तरस खाते हुये हमें भारी अत्याचारी, निर्दयी, ज़ालिम मान रहे हैं। उन अन्त्यज लोगों की सङ्ख्या इस समय छः करोड़ से न्यून नहीं है, यदि हम लोग इन से इसी प्रकार घृणा करते रहेंगे तो वे लोग अवश्य मुसलमान या ईसाई बन जायँगे—अनेकों बन गये और बनते चले जाते हैं, क्योंकि मुसलमान ईसाई प्रचारक उनमें ज़ोर शोर के साथ काम कर भी रहे हैं। इस लिये हमें उचित है कि उनको मुसलमान ईसाई बन जाने पर जो स्वत्व दे दिये जाते हैं वह पूर्व से ही दे दें। वह क्या स्वत्व हैं? सुनिये कि इन बेचारों को हिन्दू जनता अपने कुवों पर नहीं जाने देती जब कि मुसलमानों को जाने देती है और अगर कोई भङ्गी चमार मुसलमान बन जाय, और तब अगर वह कुवें पर चढ़ जाय तो किसी हिन्दू की मजाल नहीं है कि उसको रोक सके। अतः मुसलान बनने से पूर्व ही क्यों न उसको कुवें पर चढ़ जाने दिया जाय। इसी प्रकार उनके

बालकों को पढ़ाया जाना चाहिये। अगर वह स्कूलों में दूसरे लड़कों के साथ बराबर बैठता है तो हरज न समझना चाहिये इत्यादि। हर्ष की बात है कि हिन्दू जाति सुधारक महान् नेता श्रीमान् हिज़ हाईनेस महाराजा गायकवाड़ बड़ौदा नरेश ने अन्त्यजों को यह अधिकार दे दिया है।

आर्य समाज इस बारे में अपनी शक्ति भर काम कर रहा है, वैदिक समाज भी उसके साथ कन्धे से कन्धा मिला कर काम करेगा।

अष्टम अध्याय।

छूत-छात।

वर्तमान समय में हिन्दू-जाति में छुत छात का बहुत ज़ोर है। एक जाति वाला दूसरे का छुआ हुआ भोजन नहीं खाता। संयुक्त-प्रान्त आगरा अवध में तो कई ब्राह्मण दूसरों का छुआ पानी भी नहीं पीते। वे आपस में भी एक दूसरी उपजाति की रोटी नहीं खाते (जैसे दुबे जी चौबे जी का पकाया भोजन नहीं लेंगे), केवल पक्का भोजन-पूरी मिठाई ग्रहण करेंगे, कितने वह भी न खायेंगे। जहां कहीं सब ब्राह्मणों का भोज होता है तो शाक, भाजी, तरकारी अलोनी बनाई जाती है, कहते हैं कि लवण डालने से आलू अरुवी

कद्दू आदि अशुद्ध हो जाता है फिर कोई ब्राह्मण उसको न खायेगा इत्यादि।

ये सब बातें बिलकुल निर्मूल और निराधार हैं, वेदों से लेकर पुराणों तक में कहीं भी ऐसा कोई वर्णन नहीं आता। इसके सिवाय इन बातों से हिन्दू जाति का सरासर नुकसान है। हमारे पतन के कारणों में से यह भी एक मुख्य कारण है। इस लिये जहां आर्य समाज इस छूत छात का खण्डन करता है, वहां वैदिक समाज इस बारे में उससे भी एक पग आगे बढ़ायेगा।

समय बदल गया है, लेकड़ों हिन्दू (सनातन-धर्मी) ब्राह्मण, क्षत्रिय, बाबू लोग अपनी जाति वालों से छिप छिपा कर होटलों में सब का छुआ हुआ खा पी लेते हैं। उनसे हमारा कथन है कि हमारे समाज में शरीक हो कर वे अब खुल्लम खुल्ला छूत छात की परवाह न करते हुये जिसका पकाया चाहें खायें पीयें।

प्रश्न—क्या मुसलमान ईसाई का पकाया खाना भी खा सकते हैं?

उत्तर—हां, जिन को ऐसी आवश्यकता हो—जहाज पर, समुद्र पार देशों में, विशेष दशाओं में, रोगी होने पर अस्पतालों में भरती हो जाने पर, या और ऐसी दशाओं में कि जहां हिन्दू पाक कर्ता न मिलता हो वहां अगर कोई हिन्दू किसी मुसलमान ईसाई बावर्ची का पकाया भोजन खाता है

तो वह आपद्धर्म अनुसार पापी नहीं बनता। इत्यादि बातों को युक्ति प्रमाण सहित विस्तार पूर्वक हम बड़ी पुस्तक में दर्शावेंगे।

नवम अध्याय।

हिन्सा अहिन्सा और मांसाहार।

हिन्दुओं में वैष्णव आदि अहिंसा धर्मी तथा शाक्त हिंसक पाये जाते हैं। स्वामी दयानन्द का कथन है कि वेदों में केवल अहिंसा धर्म का प्रतिपादन किया गया है। परन्तु पक्षपात रहित होकर विचार करने वालों को मानना पड़ेगा कि वेदादि ग्रन्थों में दोनों पक्ष की पुष्टि पाई जाती है। इस लिये वैदिक समाज में निरामिष भोजी (वेजिटेरियन Vegetarian) और मांसाहारी—दोनों प्रकार के लोग समासद बन सकेंगे, परन्तु कोई किसी से घृणा न करेगा। वेदादि के अनेकों प्रमाणों की सप्रमाण पुस्तक "वेदार्थ प्रकाश" में आप पढ़ सकेंगे।

हर्ष का विषय है कि हमारे अहिंसा धर्म का प्रचार यूरोप आदि में ज़ोर पकड़ता जाता है, जिसका वृत्तान्त "वेजिटेरियन न्यूज़" नामक मासिकपत्र लण्डन से ज्ञात होगा जिसका पता इस प्रकार है :—" The London Vegetarian society 8 John street Adelphi W. C. 2 London

प्रश्न—यूरोप आदि के मांसाहारी जबकि निरामिष भोजी बन कर मांसाहार छोड़ते जाते हैं, तो यह कैसी वाहियात बात होगी कि आप मांसाहार की पुष्टि करने लगे हैं ?

उत्तर—वस्तुतः धर्म, आत्मोन्नति, ईश्वर भक्ति और विद्योन्नति में मांस बाधक है। इस लिये जिन लोगों का यह उद्देश्य हो, यथा सम्भव हिंसा से बचें और ईश्वर भक्ति में लगे रहें अर्थात् जो ब्राह्मणत्व गुण सम्पन्न हैं उनके लिये मांस हानिकारक सिद्ध होगा, वे इसका सेवन न करें, (यूरोप के सुविख्यात विज्ञान-वेत्ता न्यूटन मांस नहीं खाता था)। और जिन लोगों को संसार चलाना है, शत्रुओं से मुकाबिला करना है इस लिये शारीरिक बल और मार काट की आदत बनाये रखना है, तथा शत्रु संहार निमित्त निर्दयी बनना ज़रूरी है; ऐसे क्षत्रियत्व गुण वालों के लिये मांसाहार तथा शिकार करना और पशुओं को अपने हाथों बध करते रहना उपयोगी है।

अतः संसार में ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व दोनों प्रकार की शक्ति-सम्पन्न लोगों की आवश्यकता है, इस लिये निरामिष भोजी और मांसाहारी दोनों का विद्यमान रहना उपयोगी है। इन दिनों हमारी हिन्दू जाति में क्षत्रियत्व गुण वालों की बहुत न्यूनता होगई है। (तब ही तो दूसरे देश वालों ने आकर राज्य सम्भाला हुआ है) इस लिये इस न्यूनता का निवारण

कराना चाहिये। हिन्दुओं में मांसाहारियों की कमी तो नहीं है, परन्तु अपने हाथों शिकार मार कर मांस खाने वाले बहुत ही कम होंगे। यही कारण है कि मुसलमानों की थोड़ी संख्या होने पर भी वे इनको पराजित कर के लूट लिया करते हैं। सहारनपुर में हिन्दुओंकी खास कर जैन धर्मियों की दूकानों का लूटा जाना, कोहाट के सब हिन्दुओं के घरों का जला दिया जाना, मोपलाओं का अत्याचार इत्यादि, दस वर्षों (सन् १९२० से ३० तक) के अन्तर्गत होने वाली घटनाओं के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

हे अहिंसक हिन्दुओ! तुम स्वयं निस्सन्देह अहिंसक बने रहो, परन्तु अपने कुछ भाइयों को हिंसक बन कर शत्रुओं से अपनी रक्षा कराने के लिये तैयार कराओ। बिना शिकारी बने हुये निर्दयीपना (बे रहमी) नहीं आ सकती, फिर शत्रु पर भी तुम तलवार नही चला सकोगे, और वह तुम को मार कर धन दौलत छीन ले जायगा और तुम्हारी स्त्रियों का सतीत्व भी नष्ट करेगा इत्यादि। यतः आत्म-रक्षा करना परम धर्म है, इसलिये शिकारी मांसाहारी लोगों की हिन्दू-जाति में बहुत आवश्यकता है।

आर्यसमाज मांसाहार का भारी विरोधी है, अतः बङ्गाली लोग जो बिना मछली के जीवित नहीं रह सकते (या वहां के बादी वाले रोगों से पीड़ित रहेंगे) उस (आर्य समाज) के सारे सिद्धान्तों को स्वीकार करते हुये भी उसके सभासद नहीं-

बन सके, अतः ऐसे सज्जनों के लिये हमारे समाज का फाटक खुला हुआ है वे सहर्ष इसमें प्रवेश करें।

प्रश्न—यह गलत है कि मुसलमान लोग मांसाहारी होने के कारण हिन्दुओं को पीट लेते हैं, वरन् मुख्य कारण उनकी ऐक्यता, सङ्गठन और हिन्दुओं का जात पाँत मत मतान्तरों का फूट इत्यादि है।

उत्तर—यह कारण भी है, परन्तु साथ ही हिन्दू लोग जैन-धर्म के प्रभाव से प्रभावित होकर ऐसे दयालु बन गये हैं कि वे स्वात्म रक्षा निमित्त भी दूसरों पर प्रहार नहीं कर सकते—प्रहार करने के लिये जो निर्दयीपन (बेरहमी, क्रूरता, कसाईपना) दरकार है, वह हिंसक बने बिना नहीं आसकता। वह (कसाईपना) चाहे भारी अवगुण हो परन्तु किसी किसी दशामें गुण और उचित कार्य अतः धर्म सिद्ध होता है। संसार के प्राचीन इतिहास से भी यह सिद्ध है और वर्त्तमान समय में आंख फैला कर देखने से भी यही ज्ञात होता है कि कभी कहीं कोई राज्य अहिंसक निरामिष भोजी लोगों का नहीं हुआ व है। भारतीय सेना में भी गोरखा, सिक्ख, राजपूत बड़े मांसाहारी पाये जाते हैं, यद्यपि अन्य हिन्दू जातियाँ सेना में भरती हैं परन्तु शूर वीरता में उक्त मांसाहारी सैनिकों ने ही बहादुरी का यश प्राप्त किया है। काबुल के पठानों का अति बलवान होना प्रत्यक्ष है वे भारी मांसाहारी और हिंसक (खूंखार) हैं।

प्रश्न—हम सुनते हैं कि जापानी जाति जिसने रूस जैसे साम्राज्य को पराजित कर दिया था निरामिष-भोजी है।

उत्तर—वे तो मुसलमानों अंगरेजों से भी अधिक मांसा-हारी हैं, आप लोग काफ़ी छानबीन किये बिना ही अपनी मन मानी निर्णय सोच लेते हैं, यह भूल या पक्षपात है, अस्तु हम अपनी बड़ी पुस्तक में विस्तार पूर्वक सुनायेंगे।

प्रश्न—अच्छा, और सब तो आप से हम पीछे सुन लेंगे, परन्तु जो वेदों के प्रमाणों का संग्रह आपने इकट्ठा किया है उसमें से ज़रा एक प्रमाण तो अभी ही सुना दीजिये, क्योंकि हमें बिलकुल विश्वास नहीं होता—कहाँ वेद और कहाँ हिंसा तथा माँसाहार—वाह वाह भला कहाँ राम राम और कहाँ टांय टांय—

उत्तर—अच्छा विस्तार तो होगा पर क्या करें आपको सन्तुष्ट करना भी ज़रूरी है, लीजिये सुनिये और ध्यान देकर सुन लीजिये—

मांस का विधान निम्न प्रमाण से सिद्ध है :—

" एतद्वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा
मांसं वा तदेव नाश्नीयात् ॥

(अथर्व ९।६।४।९

इस सूक्त में ९ मन्त्र हैं ऊपरी ८ मन्त्रों में अतिथि सत्कार का वर्णन कर के यहाँ इस ९ वें मन्त्र में कहा गया है कि वह (गृहस्थो) अपने अतिथि को जब तक स्वादिष्ट वस्तुएँ-गाय

को दूध तथा मांस न खिला लेवें तब तक स्वयं उनको न खाय।

इस मन्त्र का यही अर्थ सर्व मान्य है, अलबत्ता आर्य-समाजियों को यह अर्थ पसन्द नहीं है, क्योंकि इस अर्थ के ठीक माने जाने पर वेद में मांसाहार का विधान सिद्ध हो जाता है।

यह अथर्व वेद का मन्त्र है, उस पर श्री स्वामी दयानन्द महाराज का भाष्य नहीं है, लेकिन आर्यसमाज के चार विद्वानों ने उस पर भाष्य रचा है हम चारों का अर्थ सुनाये देते हैं—

उन चार में से दो अर्थात् श्री पं० राजाराम जी संस्कृत प्रोफेसर दयानन्द कालिज लाहौर तथा श्रीपाद पं० दामोदर सातवलेकर जी स्वाध्याय मण्डल औंध सतारा इस मन्त्र में आये मांस शब्द का मांस ही अर्थ करते हैं, परन्तु उनके अर्थों को आर्य समाज में मान्य की दृष्टि से नहीं देखा जाता— तीसरे पण्डित श्री जयदेव शर्मा जी विद्यालंकार अजमेर अपने अथर्ववेद भाष्य में यह अर्थ करते हैं:—

"मांस—अन्य मनोमोहन दूध से उत्पन्न घी, मलाई, रबड़ी, खोवा, खीर आदि पदार्थ"—

अब पाठक विचार करें कि भला "मांस" शब्द का अर्थ मलाई, रबड़ी आदि करना खैंचातानी के सिवाय और क्या हो सकता है। चौथे आर्य सामाजिक पं० श्री क्षेमकरणदास त्रिवेदी जी प्रयाग निवासी अपने अथर्व वेद भाष्य में मांस

का अर्थ "मनन साधक [बुद्धि-वर्धक] वस्तु" करते हैं। इस अर्थ पर मांसाहारी कह सकता है कि हम मांस को बुद्धि वर्धक मान कर खाते हैं, क्योंकि वह शरीर में शक्ति बढ़ाता है तो बुद्धि वर्धक भी सिद्ध ही है।

प्रश्न—हम आर्य समाजी वेद मन्त्रों पर निघण्टु निरुक्त का ही प्रमाण मानते हैं, अतः उसी को हम ठीक मानेंगे।

उत्तर—अच्छा सुनिये वहां यों आया है :—

"...मांसं मानन वा, मानसं वा मनोऽस्मिन् सीदतीति वा०"

(निरुक्त नैगम काण्ड ४।१।३)

इसका भाषार्थ सुविख्यात वेदों के विद्वान् श्री पण्डित स्वामी हरिप्रसाद जी वैदिक मुनि लाहोर ने अपनी पुस्तक "स्वाध्याय संहिता" के ब्राह्मण काण्ड में यों किया है :—

"अर्थ—मांस इस लिये कि मान (आदर) के योग्य है, अथवा मन वालों (मनस्वी पुरुषों) का ग्रहणीय (करने योग्य) है, अथवा यह कि मन इस (मांस) में बैठता (अच्छी तरह रमता है)।"

इस निरुक्तार्थ से भी "मांस" का अर्थ मांस (गोश्त, Flesh) ही ठहरता है, हां अन्य वस्तुओं का भी विधायक माना जा सकता है।

प्रश्न—हम उक्त वैदिक मुनि का अर्थ नहीं मानते, वेद में अर्थ "मांस" शब्द का अर्थ मांस (गोश्त) नहीं वरन्

वृक्ष का गूदा, या मांस नामक जड़ी बूटी मानते हैं। इस का प्रमाण हमारे आर्य विद्वानों के निरुक्त भाष्य में देखिये ?

उत्तर—अच्छा लीजिये हम गुरुकुल काङ्गड़ी के प्रोफ़ेसर श्रीयुत् पं० चन्द्रमणि श्री विद्यालङ्कार पालो रत्न की रची वेदार्थ-दीपक निरुक्त भाष्य को, जिसको आर्य समाजों में पूरा मान्य है खोलते हैं।

उसके पृष्ठ २४६ पं० १४ पर हम यों पढ़ते हैं :—

यहां उनकी इबारत को हम ज्यों का त्यों उद्धृत करेंगे किन्तु कोष्ठकों के शब्द हमारे होंगे :—

मांस—(क) मा अननं। मांस-भक्षण से दीर्घ जीवन प्राप्त नहीं होता प्रत्युत वह आयु को क्षीण करने वाला है। (यह तो आपकी निज सम्मति है निरुक्त के मत्थे क्यों मढ़ते हैं—अस्तु आप के निर्णय से भी "मांस" से मांस ही अर्थ तो सिद्ध रहा, वृक्ष के गूदे का स्वप्न देखने वाले ज़रा ध्यान से पढ़ें) मा पूर्वक 'अन' से 'स' प्रत्यय उणा० ३। ६७। अथवा वधार्थक णिजन्त 'मन' धातु वध अर्थ में यास्क ने प्रयुक्त की है (नि० १०। १८)। (ईश्वर आपका भला करे—यही बात तो हम आपसे सुनना चाहते थे कि "मांस" का अर्थ यह है कि वह वध किये जाने पर ही प्राप्त हो सकता है—जो लोग "मांस" नामक जड़ी बूटी मानते हैं कहां हैं ज़रा इधर कान दे दें)।

(ख) यह मानसिक पापों को पैदा करने हारा है। मनो भवं मांसम्। मानस माइस-मांस। (आपके इस "ख" वाले अर्थ से भी "मांस" का अर्थ "मांस" ही सिद्ध है। रहा यह कि मांसाहार से मानसिक पाप पैदा होगा उसकी व्यवस्था देना निरुक्त का काम नहीं है, हाँ यह आपकी निज सम्मति है। हमें प्रस्तुत अथर्व प्रमाण १, २, ३, ६, से न केवल स्वयं मांस खाने की वरन् अपने पूज्य अतिथि को भी, यदि वे खाते हों, खिलाने को आज्ञा मिलती है; अतः वेद वाक्य पर अमल करते हुये यदि पापी बन कर नरक गामी होना पड़े तो हमें वह स्वीकार है)।

(ग) मन इस में जाता है। मांस-भक्षण को मन बहुत चाहता है। मांस की चाट ऐसी है कि जिसने एक दो बार इसका सेवन कर लिया, फिर उसका छूटना कठिन हो जाता है। (अतः आप के इस अर्थ से भी मांस से मांस ही तो सिद्ध रहा-रही यह बात कि उसका छूटना कठिन हो जाता है, यह आपकी निज सम्मति है; और यह केवल मांस का आहार किये बिना कल्पित कर ली गई है—आपको ज्ञात रहे कि मांस में शराब अफ़ीम आदि सदृश कोई नशा नहीं होता कि वह छूटना कठिन हो)

आपकी कई पंक्तियों को हम अनावश्यक समझ कर विस्तार भय से छोड़े देते हैं, क्यों कि उनमें कोई विशेष बात नहीं है। हाँ अन्त में विद्यालङ्कार जी ने मनु का एक श्लोक

दिया है—हम उसको यहां इस कारण उद्धृत नहीं करते कि फिर मनु के मांस विधायक श्लोकों को भी तुलना निमित्त रखना पड़ता और यह पुस्तक बहुत बढ़ जाती। उस विचार को हम अपनी बड़ी पुस्तक "वेदार्थ प्रकाश" के लिये सुरक्षित reserved रखते हैं।

पाठक गण! अब तो आप ने यह स्पष्ट समझ लिया होगा कि वेदों में मांसाहार का विधान भरा पड़ा है (हमने यहां एक मन्त्र प्रस्तुत किया है, किन्तु वहाँ सैकड़ों प्रमाण विद्यमान हैं) और माँस शब्द का अर्थ सिवाय "माँस = गोश्त के अन्य कुछ करना खेंचातानी ही सिद्ध हो रहा है, इसी लिये हमारा यह कथन है कि माँसाहारी और निरामिष भोजी दोनों वेदानुयायी बन कर हमारे इस समाज में शरीक रह सकते हैं।

प्रश्न—अगर सचमुच वेद माँसाहार की आज्ञा देते हैं, यह बात सिद्ध हो जायगी तो हम ऐसे वेदों को नहीं मानेंगे (ऐसे वाक्य कई सज्जनों के मुखारबिन्द से मैंने सुने हैं)।

उत्तर—हाँ, यही अच्छा मार्ग है। आप वेदों के अनुयायी बनें न बनें, पर वेदों को अपना अनुयायी तो न बनायें। श्री बुद्ध महाराज सच्चे थे कि जब उन्होंने यह सुना कि वेदों में पशुओं का मारना लिखा है तो उन्होंने वेदों को त्याग कर अवैदिक मत (बौद्ध) चला दिया। आप लोग भी जो अहिंसा परमो धर्मः मानते हुये ऐसी भावना रखते हैं कि

अगर वेद मांस विधायक पाये जायंगे तो वेदों को शिर झुकाना छोड़ कर अपने मन माना धर्म पर आरूढ़ होना पसन्द करेंगे, तो जाइये, जाइये, कल जाते हो आज ही वेदों का पीछा छोड़ कर दूर चले जाइये—परन्तु वेद वाक्यों के अर्थों में खेंचा-तानी कर कर के जनता की आँखों में धूल तो न डालिये, संसार को धोखे में तो न रखिये। बुद्ध महाराज के सदृश श्री स्वामी दयानन्द महाराज को भी उचित था कि वेदों के नाम से अपने दिमाग़ की गढ़न्तों को चलाने की अपेक्षा वेदों से पृथक होकर बौद्ध सदृश "दयानन्दी" पन्थ जारी करा देते तो अच्छा होता—

हाँ हाँ मेरा यह अनुभव भी सुन लें कि सत्य की सदा विजय होती ही है, अगर बुद्ध महाराज ने वेदों को हिंसा परक मान कर उन्हें त्याग दिया और एक नवीन सम्प्रदाय चला दिया तो उस बौद्ध मत के अनुयाथियों को अन्ततः घूम फिर कर उसी वैदिक निर्णय पर आरूढ़ होना पड़ा। मैं ब्रह्मा, स्याम, मलाया देशों में घूम आया हूँ और यह देख आया हूँ कि बौद्ध लोग संसार के अन्य समस्त मांसाहारियों से अधिक माँसाहारी सिद्ध हो रहे हैं—वर्तमान हिन्दू गौ को माता मान कर अवध्या समझते हैं, मुसलमान सुअर को हराम मानते हैं, ईसाई भी चूहा, बिल्ली, साँप आदि का आहार अनुचित समझते हैं, परन्तु ये बौद्ध महात्मा (चीनी, जापानी आदि) उन सब को हड़प कर जाते हैं—

बतलाइये बुद्ध महाराज के हिंसा परक वेदों का त्याग कर एक अहिंसा धर्मी मत चलाने का क्या लाभ हुआ। अरे भाई! सुन लो कि न तो सारे मनुष्य मात्र को तुम अहिंसक और फलाहारी बना सकते हो और न सब लोग मांसाहारी बनेंगे—अतः वेदों का सीधा, सादा, सरल मार्ग (दोनों पक्ष की पुष्टि) बुद्धि के अनुकूल है, इसलिये पक्षपात छोड़ कर हमारे इस सत्य निर्णय को मान लो—

प्रश्न—हम हिंसा विधान को कदापि नहीं मान सकते—देखो समस्त संसार के पूज्य श्री महात्मा गांधी जी ऐसे दृढ़ अहिंसक हैं कि सांप जैसे हिंस्र जन्तु का भी वध नहीं होने देते, वरन् उन्होंने एक अँगरेज़ से वार्तालाप में कहा था कि मैं तो साँप से कहूंगा कि ऐ साँप! अगर तू मुझको काटने में प्रसन्न है तो आ काट ले, मैं तेरी खुशी के लिये अपना शरीर न्यौछावर करना पसन्द करता हूं—

उत्तर—हम यह तो नहीं कहते कि वेदानुयायी केवल हिंसक ही बन जायें--हमारे वैदिक धर्म में तो यही खूबी और उत्तमता है कि यहाँ सब का गुज़ारा है। महात्मा गाँधी जी पूरे वेदानुयायी और भगवद्गीता के बड़े प्रेमी हैं, वे ऐसे परम अहिंसक हैं, अतः हमारा उनको शतशः नमस्कार है—वे धन्य हैं, धन्य हैं—कि मौत के देवता "साँप" को भी उक्त शब्दों से सम्बोधन करते हैं, परन्तु हमारी यह बात आप कान देकर सुन लें कि सब लोग गांधी जी जैसे नहीं हो सकते—वे ३५

करोड़ भारतवासियों में एक, अद्वितीय, प्रभुराम, तपस्वी, साधु महात्मा सिद्ध हो रहे हैं और संसार भर के १६० करोड़ मनुष्यों के पूज्य (The Greatest man of the world) नेता माने जा रहे हैं, अतः हमारे शास्त्रों का निर्णय यही है कि अहिंसक निरामिष भोजी सज्जनों की गणना उच्च कोटि में रहेगी, परन्तु जो सांसारिक लोग मांसाहार के बिना न रह सकते हों वे उनसे नीच कोटि में माने जायँगे (ब्राह्मण सर्वोच्च आसन पर आरूढ है) इस प्रकार दोनों तरह के मनुष्य वेदों की शरणागत बने रहें यह वैदिक ऋषियों का श्रेष्ठ अभिप्राय था। बुद्ध महाराज एक तरफा डिग्री देकर २५०० वर्षों में फेल हो चुके हैं। अब दयानन्द महाराज ने वही मार्ग (अहिंसा परमो धर्मः) चलाया है और वेदों के मत्थे अपने निज फैसले को पटक दिया है परन्तु उनको भी उसी प्रकार असफलता प्राप्त होगी।

अच्छा अन्त में हम यह कहते हैं कि आप (आर्य समाजी) वेदों में मांस निषेध मान कर वेदों का प्रचार करते रहें और हम वेदों में निषेध विधान दोनों मानते हुये संसार के समस्त मांसाहारियों को वेदानुयायी बनायेंगे।

ऐ मांसाहारी महाशयो! (हिन्दुओं के २४ करोड़ में से प्रायः २० करोड़ सज्जनों, और ५० करोड़ बौद्ध महानुभावों और अनेक आर्य समाजी मांसाहारियो!) आप लोगों का कल्याण इसी में है कि वैदिक धर्मी समाज में प्रविष्ट हो जांय, यहीं

तो पापी बनना पड़ेगा और मुसलमान ईसाइयों का भी, यतः इस्लाम ईसाइयत से वैदिकधर्म का उत्तम होना सिद्ध है, इसी में कल्याण है कि शुद्ध होकर (चाहे मांसाहारी रहें या निरामिष भोजी हों) हमारे साथी बन जायँ।

दशम अध्याय।

मादक-द्रव्य-निषेध।

मदिरा या अन्य प्रकार के मादक द्रव्यों—नशे की वस्तुओं यथा गाँजा, भाँग, धतूरा, चरस, अफीम, ताड़ी और तम्बाकू आदि को सब शास्त्रों ने बुरा माना और निषेध किया है; इस लिये वैदिक समाज भी इन सबका विरोध ही करेगा।

अलबत्ता वे खास खास रोगों पर औषधि रूप में बर्ते जा सकते हैं जो कि आपत्काल का धर्म है। मनु महाराज ने तो (सुरा) मदिरा पान को पाँच महा पापों में से एक माना है। कई लोग मदिरा को भैरों जी का तथा भाँग को शिव जी का प्रसाद मानकर सेवन करते हैं—यह सब बहाने बाजी इन लोगों ने बना ली है। वस्तुतः नशे वाली वस्तुओं की प्रशंसा किसी शास्त्र में नहीं की गई।

एकादश अध्याय।

आपद्धर्म।

वैदिक धर्मी-समाज यह मानता है कि साधारण धर्म जिसका शास्त्रों में विधान किया गया है, सदा काल के लिये है; परन्तु अपवाद रूप exception में यह आपद्धर्म कहा गया है। लोक में कहावत है कि "आपत्ति काले मर्यादा नास्ति" अर्थात् आपत्ति (मुसीबत, कष्ट, दुःख) के समय में कोई मर्यादा धर्म कर्म की नहीं रह जाती। उस समय जैसा करना उचित जान पड़े करे। जैसे प्रति दिन स्नान करके सन्ध्योपासना करना प्रत्येक का धर्म है (यह साधारण धर्म हुआ) परन्तु यदि वह रोग ग्रस्त हो और डाक्टर वैद्य उसको स्नान करने की मनाही कर दें, तो वह उस समय आपद्धर्म (विशेष दुःख-समय के धर्म) में आ जाता है। जब तक बीमार रहे तब तक स्नान न करे तो पाप नहीं होगा। और अगर वह रोगी होने पर भी इतने होश हवास में है कि शैय्या पर पड़ा हुआ ईश्वर का नाम ले सकता है अर्थात् सन्ध्या वन्दन, गायत्री जप, स्तुति पाठ आदि मन में कर सकता है तो वह उस दशा में बिना स्नान भी उपासना कर लिया करे इत्यादि आपद्धर्म के दृष्टान्त हैं।

मनु स्मृति में किसी कन्या के विवाह निमित्त झूठ बोल देना उचित मान लिया गया है; इसी प्रकार लिखा है कि विश्वामित्र जी अत्यन्त क्षुधा से पीड़ित होने पर एक चाण्डाल के हाथ से कुत्ते का मांस लेकर खाने पर कटिबद्ध हो गये थे। इत्यादि अनेकों प्रमाणों को हम बड़ी पुस्तक में सुनायेंगे।

पञ्चम खण्ड-परलोक सम्बन्धी।

प्रथम अध्याय।

मृतक संस्कार।

सनातन धर्मी, आर्य-समाजी तथा वैदिकधर्मी तीनों का यही मन्तव्य है कि मुर्दे को भस्म कर देना चाहिये। यही वेदों की आज्ञा है, और यह प्रणाली लाभदायक है। मुर्दे को गाड़ने से बहुत हानि है। कम से कम उतनी भूमि सदा काल या चिरकाल तक के लिये खेती से रुक जाती है जिससे उसका उपज मारा जाता है।

हर्ष का विषय है कि यूरोप के समझदार लोग हमारी इस वैदिक प्रथा को अपनाय रहे हैं, निदान लन्दन, पैरिस, बर्लिन आदि यूरोप के बड़े बड़े नगरों में क्रिमेशन सोसाइटी Cremation-Society (मुर्दों को जला डालने वाली संस्था) स्थापित होकर अपना काम धूम धाम से कर रही हैं।

हिन्दुओं की कई जातियों में मुर्दे को गाड़ने का रिवाज पड़ गया है इसको दूर कराना चाहिये। साधुओं के मुर्दों को भी समाधि के नाम से गाड़ देते हैं, इनको भी जलाना

जाना चाहिये। फूल (हड्डी) से समाधि बना सकते हैं, बालकों के मुर्दों को भी गाड़ने का रिवाज पड़ा हुआ है.परन्तु यह ठीक नहीं है।

द्वितीय अध्याय

मृतक-श्राद्ध

वैदिक समाज मृतक-श्राद्ध को वेदानुकूल मानता है। यद्यपि मरे हुये पितरों के नाम पर दी गई वस्तुओं को उन को प्राप्ति नहीं होती परन्तु तो भी हमें अपने बुजुर्गों की यादगार बनाये रखने के लिये इस प्रणाली को प्रचलित रखना चाहिये।

सनातन धर्मी मृतक श्राद्ध मानते और आर्य्य समाजी इस का खण्डन करते हैं-कहते हैं कि मरने वाले ने जो कर्म स्वयं किया था उसका फल वह पायेगा, अब जो उस के लड़के आदि चाहते हैं कि हम अपने कर्म का फल उस के नाम पर परिवर्तित करा दें, यह नहीं हो सकता इत्यादि-इस पर हमारा कथन यह है कि चाहे ऐसा न होसकता हो, परन्तु कर्म का फल नाश तो नहीं होता वह मिलता तो अवश्य ही है। मरे हुओं के नाम पर दिये गये दान का फल स्वयं उस दाता को तो मिले ही गा, फिर इस शुभ कार्यको जारी रखने में क्या हरज है।

मरने वाले का जीवात्मा न जाने कहां चला गया, हम किसी भी प्रकार यह ज्ञात ही नहीं कर सकते। परन्तु हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों का यह निर्णय था कि हमारा भी तो उन प्यारे सम्बन्धियों (मां, बाप, भाई, बहिन आदि) के साथ कुछ कर्तव्य है, उन के आंख बन्द करते ही क्या हम ऐसे तोता चश्म बन जायं! यह तो सर्वथा हमारी कृतघ्नता होगी, मरने वाले के नाम पर दिया गया सामान उस को मिले न मिले, परन्तु कम से कम हमारे परेशान, बेचैन, उदास, दुःखी, बिह्वल, आत्मा को शान्ति का तो अवश्य साधन है।

आज कल जो मरने वालों के नाम की यादगार में स्कूल, कालिज, अस्पताल, अनाथालय, गुरुकुल आदि खोले जा रहे हैं, यह सब क्या है? यह भी मृतक श्राद्ध ही तो है—मरे हुवों के नाम पर हम जीवितों को इस निमित्त से लाभ पहुँचाते हैं, यही धर्म है। अरे भाई! मरने वाला मर गया और वह हमारे दान को नहीं पा सकता, तो जीवित लोगों को भलाई तो उसके निमित्त से हो ही जाती है। इस लिये इस शुभ-कार्य को बन्द क्यों किया जाय!!!

शास्त्रकारों ने मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रकृति पाकर कि वह शोक और गमी के अवसरों पर वैराग्य रखता है और दान पुण्य अन्य अवसरोंकी अपेक्षा अधिक श्रद्धा भक्ति पूर्वक कर सकता है, यह मृतक श्राद्ध की प्रणाली जारी की थी।

अलबत्ता आज कल दान का अधिक भाग कुपात्रों को मिल जाता है, इस का अवश्य संशोधन कराना उचित है।

मृतक श्राद्ध पर वेदों के अनेकों प्रमाण खास वेदों से निकाल कर "वेदार्थ प्रकाश" पुस्तक में रख दिये जायंगे।

तृतीय अध्याय ।

भूत–प्रेत आदि ।

आर्य समाज भूत प्रेत आदि से इनकारी है, परन्तु वेदादि में प्रमाण मिलते हैं, इस लिये वैदिक समाज यह मानता है कि भूत प्रेत आदि का अस्तित्व है। अलबत्ता यह ठीक है कि जो लोग भूत प्रेत को मान कर इनका मन में मनन किया करते हैं, उन्हीं को इन से भय मिलता है; न मानने वालों को उस का कुछ भी भय नहीं होता। इस लिये चाहे उन का अस्तित्व हो या न हो, हमें उनकी परवाह नहीं करनी चाहिये। मन में ऐसा ही खयाल रखने से कल्याण है कि "भूत प्रेत का अस्तित्व नहीं है या अगर है भी तो वह हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकता"।

इस विषय में प्रमाण तथा कई विचित्र घटनायें बड़ी पुस्तक से सुनाई जायंगी।

चतुर्थ अध्याय।

स्वर्ग—नरक।

ईश्वर को मानने वाले सब मज़हब के लोग स्वर्ग नरक का अस्तित्व मानते हैं। आर्य्य-समाज इन से इनकारी है, परन्तु हम वेदों में स्वर्ग-नरक का काफ़ी वर्णन पाते हैं। इस लिये वैदिक समाज यह मानता है कि स्वर्ग नरक मौजूद हैं और मरने पर अपने कर्मानुसार हमें स्वर्ग या नरक में जाना पड़ेगा। प्रमाणों को हम बड़ी पुस्तक से सुनायेंगे।

प्रश्न—मुसलमानों का कुरान कहता है कि "बिहिश्त (स्वर्ग) तो केवल मुसलमानों के लिये बनाया गया है—जिस को वहां जाना हो वह इसलाम का मज़हब कबूल करे। ग़ैर मुसलमान (काफ़िर) लोगों के लिये खुदा ने दोज़ख़ (नरक) बना रक्खा है—उस की अग्नि में वे जलाये जांयगे इस लिये ऐ हिन्दुओ! आओ मुसलमान बन कर बिहिश्त के दावेदार बनो।" और ईसाई लोग भी यही वावेला मचा रहे हैं कि "हिन्दू जाकर ईसाई बन जाय तो स्वर्ग पायेगा"—हम उनको क्या उत्तर दें?

उत्तर—उन से कह दो कि जिस की खोपड़ी में तनिक भी बुद्धि न हो, वह तुम्हारी इस बे सिर पैर की बात को स्वीकार करे। भला यह कोई समझ और अक्ल की बात है

कि एक मुसलमान चाहे चोरी, बेईमानी, दग़ाबाज़ी, झूठ, फ़रेब आदि सर्व प्रकार के पाप करता हो तो भी वह बिहिश्त में जा धमकेगा; परन्तु हिन्दू बेचारा जप, तप, पूजा, पाठ, धर्म, कर्म करने पर भी नरक में ढकेल दिया जायगा। वाह! ऐसा अन्धेर खाता कुरआनी खुदा के घर होगा। हमारा परमेश्वर तो पूरा जज (न्यायाधीश) है। उसके समीप हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सब एक जैसे हैं; किसी एक के साथ रू रियायत [पक्षपात] न होगा। मनुष्य मात्र के लिये स्वर्ग नरक बनाये गये हैं—जो कोई पापी होगा वह नरक में और जो पुण्यात्मा होगा वह स्वर्ग में स्थान पायेगा। यतः हमारे वैदिक धर्म की यह शिक्षा बुद्धि अनुकूल और पक्षपात रहित है और इस मन्तव्य से ईश्वर पर कोई दोष अन्याय कारी होने आदि का लागू नहीं हो सकता, इस लिये मुसलमानों ईसाइयों को उचित है कि उन गुमराही वाले मज़हबों को छोड़ कर के वैदिक धर्म की शरण में आ जायें।

प्रश्न—और वे मुसलमान यह भी कहते हैं कि हमारे कुरान में बिहिश्त की बड़ी तारीफ़ लिखी है कि वहां दूध, घी, शहद की नहरें बह रही हैं, और बड़े अच्छे बागिचे लगे हुये हैं, विषय भोग के लिये हूरें मिलेंगी, खिदमत के लिये गुलमा मिलेंगे इत्यादि। इसका हम उन को क्या उत्तर दें?

उत्तर—उन से कह दो कि कुरान में ये सब बातें हमारे वेदादि ग्रन्थों से नकल कर ली गई हैं। हज़ारों वर्षों से

हिन्दोस्तान और फ़ारस, अरब आदि देशों में लोगों का आना जाना जारी था। वैदिक धर्म के ख़यालात वहां साधु संन्यासियों द्वारा पहुँच गये और अक़्लमन्द, होशियार, बुद्धिमान् हज़रत मुहम्मद साहब ने "इलहाम" में इन को शामिल कर लिया।

हमारे पुराणों से लेकर वेदों (खास वेदों) तक में यह लिखा है कि स्वर्ग में विषय भोग और आनन्द का पूरा सामान मौजूद है। दूध, घी, शहद की नहरों का वर्णन अथर्व वेदमें स्पष्ट शब्दों में आया है। फिर हमारे स्वर्ग में तो "कल्प वृक्ष" नामक एक ऐसा पेड़ लगा दिया गया है कि उस से प्रत्येक स्वर्ग-वासी अपनी इच्छानुकूल जो कुछ चाहे मांग सकता है, और यह भी लिखा है कि स्वर्ग में आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा, वहाँ किसी को कभी कोई दुःख नहीं सतायेगा, न कोई भूखा, प्यासा होगा और न बूढ़ा या बीमार होगा। और हूरों की जगह यहाँ अप्सरायें हैं—उर्वशी, मेनका आदि उनके नाम हैं, और "गुलमा" शब्द "गन्धर्व" का अपभ्रंश है, जो स्वर्ग में गाने वाले सेवकों को कहा गया है इत्यादि।

निदान क़ुरान इञ्जील आदि में कोई बात ऐसी नवीन नहीं कथन की गई जो उन पुस्तकों के प्रकाशित होने से पूर्व की हमारे प्राचीन पुस्तकों में लिखी हुई विद्यमान न रही हो। इस लिये बिहिश्त में जाने के अभिलाषियों को वैदिक धर्मी

ही बन कर मरना चाहिये। [और तो क्या "बिहिश्त" शब्द ही वेद के "विशिष्ट" शब्द का अपभ्रंश है]।

पञ्चम अध्याय।

जादू टोना आदि,

आर्य समाज जादू, टोना, योग-सिद्धि, मोजज़ात, करामात आदि को नहीं मानता, परन्तु वेदादि में हम इन का वर्णन पाते हैं और मिस्मेरिज़्म, हिप्नाटिज़्म आदि के द्वारा प्रत्यक्ष ऐसी बातें देखी सुनी जा रही हैं जिन के कारण जादू आदि से इनकार नहीं हो सकता।

इसलिये वैदिक समाज जादू, टोना, शगुन, अशगुन, मोजज़ात, करामात, योग सिद्धि आदि को ठीक मानता है; अलबत्ता आज कल अनेक धूर्त लोग अपनी चालाकी से लोगों को लूटते रहते हैं, इन से सावधान रहना चाहिये।

इस सम्बन्ध में बड़ी अद्भुत बातें और पुष्कल प्रमाण बड़ी पुस्तक में प्रस्तुत किये जाँयगे।

षष्ठम अध्याय।

"फलित ज्योतिष"

आर्य-समाज ज्योतिष के फलित भाग को मिथ्या मानता

है, परन्तु हमें ऐसे प्रत्यक्ष दृष्टान्त मिल रहे हैं जिनसे इस विद्या की सचाई का कायल होना पड़ता है।

इस लिये वैदिक समाज गणित, फलित ज्योतिष तथा सामुद्रिक विद्या को ठीक मानता है; अलबत्ता नकली कम पढ़े नाम मात्र के ज्योतिषी लोगों ने लूट का बाज़ार गरम कर रक्खा है उन से सावधान रहना चाहिये।

षष्ठम खण्ड-स्वजातीयता

प्रथम अध्याय.

संस्कृत और हिन्दी भाषा।

हमारे धार्मिक ग्रन्थ वेदादि संस्कृत में हैं, इसलिये प्रत्येक हिन्दू को संस्कृत पढ़ कर इन ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिये। और इसका आरम्भ हिन्दी से होगा, इसलिये वैदिक समाज के सभासदों को हिन्दी भाषा और देवनागरी अक्षरों का अभ्यास कर लेना परम कर्तव्य है। देवनागरी बहुत आसानी से सीखी जा सकती है, आप एक सप्ताह में इसे जान सकेंगे।

भारतवर्ष में आज कल अनेकों भाषायें, बङ्गाली, गुजराती, मरहठी आदि बोली जाती हैं; परन्तु इन सब से अधिक व्यापक हिन्दी भाषा है, जिसको समस्त हिन्दुस्थान की एक भाषा Lingua Franca माना जायगा। यह श्रेष्ठता हिन्दी ही में है कि पञ्जाबी [गुरुमुखी] के केन्द्र लाहौर, सिन्धी के केन्द्र कराची, गुजराती के केन्द्र बम्बई, मरहठी के केन्द्र पूना, कनाड़ी के केन्द्र मैसूर, तैलङ्गी के केन्द्र निज़ाम हैदराबाद,

बङ्गाली के केन्द्र कलकत्ता और ब्रह्मी भाषा के केन्द्र रंगून तथा माराडले में आप जाइये और हिन्दी भाषा को ही एवं मान्य पाइयेगा। यद्यपि उसका निज स्थान ब्रह्मावर्त [संयुक्तप्रान्त आगरा अवध], बिहार, राजपूताना, मारवाड़ तथा मध्य भारत मात्र है।

मैं बम्बई में यह देख कर दङ्ग रह गया कि जब गुजराती महाशय बङ्गाली बाबू से मिलते हैं, तो दोनों अपनी २ भाषा को छोड़ कर हिन्दी की शरण पकड़ते हैं, नहीं तो वे एक दूसरे से बातचीत ही नहीं कर सकते, क्योंकि न इनकी बङ्गाली को वे समझते और न उनकी गुजराती को ये समझ पाते।

ऐसी उत्तम, सार्वजनिक, एवं प्रिय भाषा हिन्दी को कौन न अपनायेगा !!! इसलिये जो लोग हिन्दी न जानते हों वे अवश्य हिन्दी सीखने की कोशिश करें, और जो लोग हिन्दी जानते हों वे और आगे बढ़ें और देववाणी संस्कृत का स्वाध्याय करें। संस्कृत भी ऐसी कठिन नहीं है जैसी लोगों ने उसे हौआ बना रक्खा है। स्कूलों में कम से कम आप अपने लड़कों को संस्कृत सेकण्ड लैंग्वेज (द्वितीय भाषा) तरीके तो अवश्य पढ़ा दिया करें। जो लड़के संस्कृत को अत्यन्त कठिन भाषा समझ रहे हैं, यह उनकी भूल है। हमारे लिये यदि अंगरेजी जैसी भाषा जो ७००० मीलों दूर देश की है कठिन नहीं है तो फिर भला संस्कृत जिसके शब्द सौ में पचास तो कम से कम हमारे प्रति दिन के बोल चाल में प्रचलित हैं कैसे कठिन मानी जा सकती है ?

द्वितीय अध्याय

स्वदेशी वस्तु प्रचार।

हम सब भारतवासियों को उचित है कि जहाँ तक हो सके अपने इस देश भारत की बनी हुई वस्तुओं का सेवन किया करें, यह इस अभिप्राय से कि हमारे देश का धन हमारे ही गरीब निर्धन भाइयों के काम आवे। यूरोप निवासी ऐसा ही करते हैं—अङ्गरेज लोग अपने स्वदेश इँगलैंड की वस्तुयें वर्तते हैं, जर्मन लोग जर्मनी की, फ्रेंच लोग फ्रान्स की इत्यादि। वे लोग यहाँ हिन्दुस्थान में रहकर या संसार के किसी भी भाग में रहते हुए अपने देश की ही सब वस्तुयें वर्तते हैं, यहाँ तक कि खाने पीने का भी सब सामान यथा सम्भव यूरोप से ही आता है। हमें इससे यह लाभदायक शिक्षा ग्रहण करना चाहिये—अर्थात् उनकी भाँति भारतवासियों को भी यथा सम्भव भारत की ही वस्तुयें बर्ताव में लाना चाहिये।

प्रश्न—स्वदेशी वस्तुओं के प्रचारकों को तो राजनैतिक [पॉलिटिकल] कार्यकर्ता समझा जाता है। क्या वैदिक समाज का सम्बन्ध राजनीति से भी रहेगा?

उत्तर—यह इस प्रकार का भेद भाव कि धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आन्दोलन पृथक पृथक हुआ करें, यूरोप वालों

का रिवाज है। हमारे शास्त्रों में वे पृथक पृथक नहीं हैं, किन्तु वे सब धर्म के अङ्ग माने गये हैं। इसलिये यद्यपि हमारी संस्था धार्मिक होगी परन्तु आवश्यकतानुसार राजनीति की शिक्षा भी वेदों से निकाल कर हमें प्रगट करना पड़ेगा। यहाँ तो कुरुक्षेत्र के संग्राम भूमि में भगवद्गीता जैसे धार्मिक शास्त्र का उपदेश दिया जाता है।

देश में कांग्रेस आदि राजनैतिक कार्य करने वाली अनेकों संस्थायें विद्यमान हैं और हिन्दू महा सभा भी अधिकांशतः राजनैतिक मामलात से सम्बन्ध रखती है इस लिये हमारे समाज का ऐसी कोई खास जरूरत राजनैतिक कार्यों में पड़ने की नहीं है परन्तु भारी आवश्यकता पड़ जाने पर वह पीछे भी न हटेगी।

तृतीय अध्याय

शुद्धि।

जो मुसलमान, ईसाई आदि हमारे सिद्धान्तों को स्वीकार करके वैदिक धर्मी बनना चाहें उनका प्रायश्चित्त कराकर हिन्दू जाति में शामिल कर लेना शुद्धि कहलाता है। आर्य समाज ने यह मार्ग चालू किया है, सनातन धर्मी लोग पूर्व में तो भारी विरोध करते थे, परन्तु अब सनातन धर्म के भूषण,

परम पूजनीय, महामना, श्री पण्डित मदनमोहन मालवीय जी महाराज के पुरुषार्थ और हिन्दू महासभा की पुष्टि के कारण उतना विरोध नहीं रह गया है, फिर भी साधारण सनातनी अब भी विरोधी ही बने हैं।

वैदिक समाज इस सम्बन्ध में आर्यसमाज का पूरा पूरा साथ देवेगा; और न केवल अपने बिछुड़े हुए भाइयों अर्थात् सात करोड़ हिन्दी मुसलमानों और साढ लाख हिन्दी ईसाइयों को शुद्ध करा कर वापस लेवेगा; वरन् यूरोप, अमेरिका अरब, ईरान, रूस आदि के मुसलमान ईसाइयों में तथा चीन जापान, सुमात्रा, जावा आदि देशों के बौद्ध धर्मी लोगों में वेदों का डङ्का बजायेगा और उन धर्म की प्यासी आत्माओं को वैदिक धर्म की शान्ति दायक अमृत-पान कराता हुआ उन्हें शुद्ध करायेगा।

आर्य-समाज ने तो केवल हवन यज्ञ द्वारा शुद्धि कराने का विधान किया है, परन्तु हमारा समाज गङ्गाजल, तुलसी पत्र आदि द्वारा भी शुद्धि का प्रचार करेगा। इस सम्बन्ध में युक्ति प्रमाणों को वेदार्थ-प्रकाश में आप पढ़ सकेंगे।

चतुर्थ अध्याय।

दावते-वैदिक धर्म।

मुसलमानों ने हमें दावते-इसलाम दे रक्खा है (पढ़ो ख्वाजा हसन निज़ामी साहब की पुस्तिका "महात्मा गाँधी को दावते-इस्लाम") और ईसाई पादरी साहबान यूरोप अमेरिका से यह बीड़ा लेकर निकले हैं कि समस्त हिन्दोस्तान को ईसाई बनाकर रहेंगे। परन्तु अब काया पलट गई है। जब तक हम लोग बे परवाह थे तब तक वे काफ़ी शिकार मार ले गये (सात करोड़ मुसलमान और साठ लाख ईसाई बना सके)। परन्तु अब हमें पूरी समझ आ गई है और हमने यह भली प्रकार ज्ञात कर लिया है कि विद्या, बुद्धि, विज्ञान दर्शन आदि के आधार पर संसार का कोई मज़हब हमारे वैदिक धर्म का मुकाबिला नहीं कर सकता। और इसलाम ईसाइयत की अधिकांश बातें तो विद्या बुद्धि से विरुद्ध हैं, इस लिये किसी हिन्दू को धर्म और मज़हब के लिये मुसलमान, ईसाई बनने की आवश्यकता नहीं है। बल्कि हम अपने मुसलमान, ईसाई दोस्तों को वैदिक धर्म की दावत देते हैं और यह बतला देना चाहते हैं कि इसलाम ईसाइयत में जो कुछ भी उत्तमता पाई जाती है वह सब की सब वेदों शास्त्रों में विद्यमान हैं। अतः हमारे वेदादि इसलामी, ईसाई, बौद्ध

पुस्तकों से बहुत पुराने हैं, अतः यह मानना पड़ेगा कि वे सब हमारे यहाँ से ही उनमें नकल करके ले ली गई थीं।

इस लिये ऐ मुसलमानो, ईसाइयो, बौद्ध धर्मियो! आप को उचित है कि अपने उसी प्राचीन धर्म में फिर वापस आ जायँ—शुद्ध होकर हमारे समाज के सभासद बन जायँ।

हे मुसलमानो, इसाइयो, बौद्धो! आप एक बात यह भी नोट कर लें कि अगर आर्य्य समाज किसी सिद्धान्त में आपकी तसल्ली नहीं कर सकता, तो अब वैदिक समाज निस्सन्देह आपकी सारी शङ्काओं को निवारण कर देवेगा।

हम दावे के साथ कह सकते हैं कि वह सारी खूबियां, फ़ज़ीलतें (श्रेष्ठता) और उत्तमतायें जो संसार की किसी भी मज़हब में हो सकती हैं वे सबकी सब हमारे वेदादि में विद्यमान हैं। और यह बात केवल हमारे निज ज़बानी जमा खर्च की नहीं है, बरन् यूरोप के बड़े बड़े विद्वानों (मोक्षमूलर, विल्सन, हन्टर, ग्रिफिथ, मैकडानेल, शोपनहार आदि) की प्रबल साक्षी से सिद्ध है, जिनको हम बड़ी पुस्तक में विस्तार-पूर्वक दर्शायेंगे और हमें आशा है कि उस पुस्तक को पढ़ने पर किसी सज्जन को किसी प्रकार की शङ्का न रह जायगी, क्योंकि प्रत्येक विषय की पुष्टि पुष्कल युक्ति प्रमाणों से करदी जायगी।

प्रश्न—जबकि वेदों के सदृश हमारे कुरान इञ्जील आदि भी आपके मन्तव्यानुसार इल्हामी (खुदाई) किताबें हैं, तो

फिर हम मुसलमान, ईसाई अपने अपने मज़हब को त्यागकर वैदिक धर्मी क्यों बनें ?

उत्तर—इस लिये कि उनकी शिक्षा अधूरी है और उनमें अनेकों बातें मनुष्य को उन्नत नहीं बरन् अवनत करने वाली तथा विद्या, बुद्धि, विज्ञान, फिलासफीसे विरुद्ध पाई जाती हैं, जबकि वेद विद्या भण्डार और सर्व प्रकार से मनुष्य के लिये कल्याणदायक हैं।

प्रश्न—अच्छा अगर हम यह सिद्ध कर दें कि वैसी ही बातें वेदों में भी भरी हुई हैं तो आप क्या करेंगे ?

उत्तर—तो उस दशा में हम वेदों के उतने भाग पर अमलदरामद करना अपना कर्त्तव्य न समझेंगे और ऐसा मान लेंगे कि वे बातें प्राचीन समय के लिये ठीक रही होंगी, किन्तु अब इस समय के अनुकूल नहीं हैं; लेकिन आप मुसलमान ईसाई लोग तो कुरान इञ्जील के एक शब्द से भी इनकारी नहीं बन सकते। आप को तो मजबूर हो कर उन्हीं बातों को दिमाग़ में ठोसना ही पड़ता है फिर क्यों अपना दिमाग़ ख़राब कर रहे हो, क्यों नहीं ऐसे मज़हब से पीछा छुड़ा लेते !!!

प्रश्न—हम कांग्रेस वाले हिन्दू हैं और यह मानते हैं कि मुसलमानों को अपना मज़हब छोड़ कर हिन्दू बनने का उपदेश दने और शुद्धि का बाज़ार गरम करने से हमारे मुसलमान भाई नाराज़ होते हैं, फिर हिन्दू मुस्लिम ऐकयता में

बाधा पड़ती है, जिससे स्वराज्य प्राप्ति में देरी हो जायगी। इसलिये हम यह चाहते हैं कि आप लोग अभी अपने शुद्धि के कार्य को रोक दें, जब स्वराज्य मिल जायगा तब खूब जोर शोर के साथ अपना कार्य कर लेना।

उत्तर—आप लोग यही उपदेश मुसलमानों ईसाइयों को क्यों नहीं देते कि तुम लोग हिन्दुओं को मुसलमान ईसाई बनाना बन्द करा दो—वहाँ तो तबलीग़े-इसलाम और तब-लीग़े-ईसाइयत का कार्य बड़ी तेज़ी के साथ जारी है—निदान कांग्रेस के प्रधान पद को सुशोभित करने वाले स्वर्गवासी मौलाना मुहम्मदअली साहब ने हज से वापस आकर यह घोषणा की थी कि मैंने जाने खुदा-काबा शरीफ़ का दरवाज़ा पकड़ कर खुदा से यह दुआ माँगी कि "अ खुदा! तू हिन्दो-स्तान के सब हिन्दुओं को महात्मा गाँधी सहित मुसलमान बना दे"—और उन्होंने उन दिनों दिल्ली की जामा मस्जिद में लेक्चर दिया कि तमाम हिन्दुस्तान को हम मुसलमान बना लेंगे।

बतलाइये कांग्रेस वाले सज्जनो! जिनका मज़हब विद्या, बुद्धि से विरुद्ध शिक्षा देता है; वे तो यह दावा बाँध रहे हैं कि "हम सब हिन्दुओं को ऐसे अच्छे वैदिक धर्म से निकाल कर अपने अन्धकारमय मज़हब में प्रविष्ट करायेंगे" और हम से आप यह चाहते हैं कि हम दावते-वैदिक धर्म न दें। यह आपकी बात कहाँ तक उचित हो सकती है!! नहीं नहीं

कदापि नहीं—सुनो हमारी प्रार्थना परमेश्वर से यह है कि वह संसार भर के मुसलमानों, ईसाइयों, बौद्धों को पूर्ववत् फिर वेदानुयायी बना देवे (कृण्वन्तो विश्वमार्यम्)।

प्रश्न—अजी, हम कांग्रेस वाले हिन्दू तो ऐसा मानते हैं कि यदि २४ या २७* करोड़ हिन्दू सब के सब मुसलमान या ईसाई बन जायं, तो भी क्या हरज है। अगर ऐसा होकर भी स्वराज्य मिल जाय तो यह सस्ता ही सौदा है।

उत्तर—ज़रा अक्ल को दया करो—जब संसार में हिन्दू एक भी न रह जायगा और हमारे सारे मन्दिरों को मस्जिद या गिरजाघर बना लिया जायगा (काशी के विश्वनाथ जी के स्वर्ण मन्दिर को ज़ालिम बादशाह औरंगज़ेब मस्जिद में परिवर्तित कर गया है, इसी प्रकार मथुरा, अयोध्या के कृष्ण, राम-जन्म स्थानों पर मस्जिदें बनी हुई हैं) तो उस दशा में जो स्वराज्य मिलेगा भी तो वह तो मुस्लिम स्वराज्य होगा जब हमारी हिन्दू जाति ही विद्यमान न रह जायगी, तो फिर हम ऐसे सत्यानाशी स्वराज्य को लेकर क्या करेंगे—ऐसे सोने को जारिये जा से टूटे कान—निदान हमें ऐसे स्वराज्य का महँगा सौदा पसन्द नहीं है। हमें अपने मथुरा, अयोध्या, प्रयाग, काशी, जगन्नाथ, द्वारिका आदि तीर्थ प्यारे हैं; इनको

* सरकारी लेखानुसार हिंदू सन् १९३१ में २४ करोड़ हैं परन्तु कोल, भील, संथाल, बौद्ध, जैन, सिक्ख आदिको भी हिंदू मानने से वे २७ करोड़ पाये जाते हैं—

बेंच कर (उनको मक्का, मदीना आदि बना कर) जो स्वराज्य मिलने वाला है उस पर हम लात मारते हैं—खड्ढे में पड़े वैसा स्वराज्य,

प्रश्न—अच्छा फिर स्वराज्य कैसे मिलेगा?

उत्तर—जिस प्रकार संसार के दूसरे देशों में अनेकों मज़हब वाले रहते हुये अपने अपने मज़हब का प्रचार करते हुये (दूसरों को अपने मज़हब में शामिल करते हुये) स्वराज्य प्राप्त कर सके हैं (इङ्गलैण्ड में ईसाई यहूदी आदि, और फिर ईसाइयों के दो सम्प्रदाय कैथोलिक प्रोटेस्टेन्ट परस्पर भारी विरोध रखते हुये विद्यमान हैं, मैंने मेसोपोटोमिया—बग़दाद में मुसलमान, ईसाई, यहूदी इन तीन मतोंके लोगों को साथ २ रहते देखा है) इसी प्रकार भारत में भी होगा।

हम धार्मिक (मज़हबी) लोग अपने कार्य में लगे रहें और आप पोलिटिकल [राजनैतिक] लोग अपने धुन में मग्न रहें—कोई किसी के कार्य में बाधक न बने—आप कांग्रेसी हिन्दू हमें शुद्धि के कार्य से न रोकें, जिस प्रकार कांग्रेसी मुसलमान लोग अपने मौलवी साहबों को तबलीग़े-इसलाम से नहीं रोकते। और वस्तुतः आज कल स्वतन्त्रता का ज़माना है—मुसलमान कहते हैं कि हमारा इसलाम मुक्ति दाता है, सब हिन्दुओं को मुसलमान बन जाना चाहिये। ईसाई कहते हैं कि हमारी ईसाइयत मुक्ति दाता है, सब हिन्दू मुसलमान दोनों को अपना २ मज़हब त्याग करके ईसाई बन जाना चाहिये;

और हम कहते हैं, कि हमारा हिन्दू धर्म सब से पुराना और तुलना में अन्य सभों से श्रेष्ठ है, इस लिये सब मुसलमानों ईसाइयों को हमारे वैदिक धर्म की शरण में चले आना चाहिये, तब ही वे मुक्ति पायेंगे अन्यथा नहीं।

आर्य्य-समाज यह शिक्षा संसार में फैला रहा है, परन्तु अब हमारा वैदिक धर्मी समाज और आगे बढ़ कर यह घोषणा करता है कि मान लो कि अगर वेदों में कोई दोष भी सिद्ध हो जांय तो हम परवाह न करेंगे, उतने अंश को छोड़ देंगे; अतः इस प्रकार संसार के समझदार, अक्लमन्द लोगों के लिये हम संशोधित वैदिक धर्म का फाटक खोले देते हैं कि जिसकी मरज़ी हो चला आवे—

नक़ारा वेद का बजता है,
आये जिसका जी चाहे।
सदाक़त वेद अक़दस,
आज़माये जिसका जी चाहे॥

इति ओम् शम्।

सर्व-हितैषी—

मङ्गलानन्द पुरी संन्यासी,

वैदिक धर्म समाज कार्य्यालय, नं० १७३
अत्रि अनसूया प्रयाग (इलाहाबाद)
२—संन्यासी औषधालय, शङ्कर प्रेस, चौगड़ा-कानपुर

परिशिष्ट-१

आर्यसामाजिक सज्जनों से निवेदन।

आपने इस पुस्तक को पढ़ लिया और यह ज्ञात कर लिया कि किस लिये एक नवीन समाज के स्थापना की आवश्यकता है। अतः अगर आपकी दृष्टि में मेरा यह प्रस्ताव उचित हो तो आपसे प्रार्थना है कि आप आर्यसमाजमें रहते हुये ही हमारे साथी बन जायँ, और इस शुभ कार्य को चालू करा दें। हम देखते हैं कि प्रत्येक जाति की सभाओं (ब्राह्मण सभा, कान्य-कुब्ज सभा, अग्रवाल सभा, कायस्थ सभा इत्यादि) में आप लोग भाग ले रहे हैं, यद्यपि गुण कर्म से वर्ण मानने के आर्य सामाजिक सिद्धान्त से यह विरुद्ध पड़ता है। लाहोर का जात पांत तोड़क मण्डल भी आर्य सामाजिक वर्ण व्यवस्था का बाधक सिद्ध हो रहा है, पर तो भी उसको हिन्दू जाति सुधारक मानकर कुछ आर्य सामाजिक सज्जन गण हो चला रहे हैं। हिन्दू महा सभा की स्थानीय शाखाओं में आप लोग

ही अधिकांश योग दे रहे हैं, क्योंकि वह हिन्दू जाति सुधारक संस्था है। फिर कांग्रेस के आदेशानुसार सबसे अधिक संख्या में आप लोग ही जेहलखानों में गये थे; क्योंकि वह भारत सुधार का कार्य था और सैकड़ों स्कूल, कालिज, अनाथालय, पुत्री पाठशालायें, विधवाश्रमादि को भी आप लोग केवल हिंदू जाति सुधार के ख्याल से ही चला रहे हैं इत्यादि २।

इसी प्रकार आप से हम आशा रखते हैं कि यतः आप लोग वेदोंका प्रचार सारे संसारमें कराना अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं और यही मुख्य उद्देश्य हमारे इस वैदिक धर्मी समाजका है इसलिये आपको हमारा साथ अवश्य देना चाहिये।

प्रश्न—वह कार्य तो आर्यसमाज स्वयं कर ही रहा है, एक और समाज के स्थापना की क्या आवश्यकता है?

उत्तर—आर्य समाज श्री स्वामी जी महाराज के वेद-भाष्य पर ही आधार रखता है; जिन लोगों का मस्तिष्क दयानन्द-भाष्य से सन्तुष्ट नहीं होता, उन के लिये बतलाइये आर्य-समाज क्या इलाज कर सकता है—क्या जबरदस्ती किसी के दिमाग में आप स्वामी जी की ही बातों को ठोस सकते हैं—हाँ आपने समझाया, बुझाया, सारी शक्ति लगाकर युक्ति प्रमाण दिया, परन्तु फिर भी ऐसे लोग देखे जाते हैं जो मांसाहार नहीं छोड़ सकते, जो साकारोपासना को पाप नहीं मानते, जो वेदों में इतिहासों का होना मानते ही हैं, जो भूत प्रेतादि या जादू टोना छू मन्तर के

करामात अपने आखों से प्रत्यक्ष देख चुके हैं, जो मेस्मरिज्म हिप्नाटिज्म का अभ्यास स्वयं कर रहे हैं इत्यादि इत्यादि; आप बतलाइये वे बेचारे कहां जायँ, क्या करें, आर्यसमाजी वे बन नहीं सकते, सनातनी (पौराणिक) वे हैं नहीं, आखिर उन बेचारों के लिये भी कोई ठेकाना होना चाहिये या नहीं ? अतः आप उनके लिये इस वैदिक-धर्मी समाज को चला दें, कि वेदों का संसार में अधिक प्रचार हो सके। एक ओर आर्यसमाज उन का दयानन्द भाष्यानुसार प्रचार कराता रहे, तो दूसरी ओर हमारा यह समाज सायण, महीधर, ग्रिफ़िथ आदि भाष्यों द्वारा उनका डंका सारे संसार में पीटने लगे—क्या यह एक उत्तम और अति उत्तम मार्ग वेद प्रचार का नहीं है !!

हम देखते हैं कि आर्यसमाज में ऐसे अनेकों सज्जन प्रविष्ट हुये हैं, जो उसके सब सिद्धान्तों को न मानते हुये भी उसको एक हिन्दू धर्म सुधारक और हिन्दू जाति रक्षक संस्था मान कर उसमें प्रविष्ट हुये हैं—दृष्टान्त में हम श्रीमान् राजा साहब श्रीयुत अवधेशसिंह बहादुर काला कांकर (प्रतापगढ़, अवध) नरेश महानुभाव के लेख से, जो आर्यमित्र के ऋषि अंक दीपमालिका सम्वत् १९८८ के पृष्ठ ५ पर "आर्य-समाज की आवश्यकता है"—इस शीर्षक में छपा है, एक वाक्य यहाँ उद्धृत किये देते हैं—

श्री राजा साहब कहते हैं कि ' जब मैं कुछ बड़ा हुआ तो

संसार की गति देख कर मुझे भी अपने धर्म में कुछ सुधार करने की सूझी।

उस समय मैंने सोचा था कि सनातन धर्म से बुरी बातों को निकालकर ऐसा धर्म बनाऊँ—जो समयानुकूल हो। अतः प्रत्येक दिशा में सुधार पर मनन करने लगा·····कुछ दिनों में सुधार कर के एक नवीन सनातन धर्म बनाया, थोड़े दिनों बाद मुझे पता चला कि इसी को आर्यसमाजी वैदिक-धर्म कहते हैं। और स्वामी दयानन्द जी ने अपना कोई नया धर्म नहीं चलाया, किंतु इस समय के सनातन धर्म से बुराइयाँ निकाल दीं और उसको वैदिक प्रमाण देकर संसार के सामने रख दिया" इससे स्पष्ट हो रहा है कि उक्त राजा साहब किस भावना से आर्यसमाजी बने थे। ऐसे ही अनेकों सज्जन आर्यसमाज में प्रविष्ट हुए हैं, अतः हम उक्त राजा साहब से तथा आप सज्जनों से प्रार्थी हैं कि यतः आपका हमारा उद्देश्य एक ही है, इसलिये अवश्य हमारा हाथ बँटाइये।

मैं इस साल पञ्जाब की समाजों में धर्म प्रचार करता रहा हूँ। वहाँ मुझ को पता लग गया कि आर्यसमाजों में अनेकों महाशय मांसाहारी मौजूद हैं—कई धुरन्धर विद्वान् वेदों में इतिहास मानते हैं, कई वेदों में मृतक श्राद्ध, तर्पण पाते हैं इत्यादि—

प्रश्न—वे अपनी ऐसी बातों को जनता पर प्रगट क्यों नहीं कर देते?

उत्तर—आर्य समाज ने उन विद्वानों के मुंह पर ताला लगा रक्खा है कि वे अपने छानबीन research का सारांश ज़ुबान से बोल न सकें । विद्वान् लोग (संस्कृत के शास्त्री आदि तथा अङ्गरेज़ी के ग्रेजुयेट) जो आर्यसमाजों के संस्थाओं में नौकरी पर हैं (उपदेशक, अध्यापक, मास्टर, प्रोफेसर आदि हैं) डरते हैं कि हृदय की सत्यवार्ता प्रगट कर देने से शायद नौकरी छूट जाय, फिर कैसे निर्वाह चलायेंगे। आजकल नौकरी वालों के लिये अत्यन्त कष्ट का समय है—लगी लगाई नौकरी छूट जाय तो वे बेचारे क्या करें, कैसे शरीर यात्रा चलायें ।

हम सुनते थे कि इसलाम ने काफिरों के दिलों पर मुहर कर दी है, यह बात ठीक हो न हो, परन्तु यह हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि आर्य समाज अपने विद्वानों के दिमागों पर मुहर लगा रहा है, क्या मजाल कि वे स्वामी दयानन्द के निर्णय पर एक शब्द भी कथन कर सकें। हाँ अगर आर्य समाज के नेता गण ऐसी घोषणा करा देते कि पूरी स्वतन्त्रता दी जाती है—वेदों को पढ़ने वाले शुद्धान्तः करण से अपना जो कुछ मन्तव्य हो प्रगट करें—मतभेद के कारण उनकी नौकरी आदि में बाधा न पड़ेगी—तो सच्चाई का प्रचार हो सकता था, परंतु यतः आर्यसमाज ऐसा नहीं कर सकता, इस लिये आर्यसमाज के उक्त मतभेद रखने वाले विद्वानों ! आइये आइये, आप वहाँ से यहाँ चले आइये और अपनी एक नवीन समाज

सङ्गठित करके सच्चे दिलसे वैदिक धर्म प्रचार में दत्त चित्त हो जाइये।

प्रश्न—ऐसे महान् कार्य के लिये कोई महान् आत्मा दरकार था—स्वामी दयानन्द ऐसे धुरन्धर विद्वान्, योगी, बालब्रह्मचारी, परम त्यागी, तपस्वी, ऋषि थे तो वे आर्यसमाज स्थापित कर गये—फिर कोई ऐसा महा पुरुष जन्मेगा तब ऐसे शुभ कार्य सम्पादन कर सकेगा, तुम्हारे जैसे साधारण व्यक्ति द्वारा यह महान् कार्य नहीं हो सकता?

उत्तर—यह ठीक है, परन्तु मसल है कि घड़ी में घर जले ढाई घड़ी भद्रा—हिन्दू जाति को अन्य लोग हड़प करते चले जा रहे हैं, और यदि रक्षा का उपाय न किया गया तो निकट भविष्य में संसार से हिन्दू जाति तथा हिन्दू धर्म मिट जाने वाला प्रतीत होता है; ऐसी दशा में हमें अपने पावों पर खड़ा होना चाहिये—मैं स्वयं मानता हूँ (पढ़ो भूमिका) कि इस प्रस्ताव को चलाना मेरे लिये छोटे मुँह बड़ी बात थी, लेकिन क्या किया जाय जब कि कोई बड़े आदमी आगे बढ़ते ही नहीं, (श्रीमान् स्वर्गवासी लाला लाजपतरायजी वृद्धावस्था में वेदों को अनीश्वरीय मानने से आर्यसमाज से पृथक् होगये थे, वे ऐसा प्रस्ताव चलाते तो उत्तम होता परन्तु उन्हें राजनैतिक आन्दोलनों से छुट्टी न थी) तो अपने अन्तःकरण की आवाज़ को जनता पर प्रगट कर देना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा—

अगर आप महाशय गण मेरे इस प्रस्ताव को यथार्थ पाते हों तो अपना काम समझकर इस शुभ कार्य को चलादें—आप स्वामी दयानन्द के भक्त हैं (मैं भी हूँ) उनका नाम लेकर उन्हीं के मिशन—वेदों का सारे संसार में प्रचार कराना—की पूर्ति निमित्त इस कार्य का सम्पादन कीजिये । उनके निर्धारित दस नियमों पर ही हम आरूढ़ हैं । अतः अगर स्वामीजी जैसे शक्ति सम्पन्न महात्मा इस समय मौजूद नहीं हैं तो सौ, दो सौ, हजार, पाँच सौ साधारण व्यक्तियों की संयुक्त शक्ति भी कुछ न कुछ काम कर सकेगी—कम से कम हम लोग अपना कर्त्तव्य, उद्योग, पुरुषार्थ, साहस तो कर डालें क्योंकि कहा है कि—कर्मण्येवाधिकारस्ते० । कर्म करना ही मनुष्य का कर्तव्य है (भगवद्गीता)

मैं स्वयं साधारण व्यक्ति हूँ कुछ कर धर नहीं सकता (नहिं विद्या, नहिं बाहु बल, नहिं खर्चन को दाम) परन्तु एक मार्ग दर्शा देना उचित समझकर मैंने यह प्रस्ताव आप के सामने रख दिया है, आप ही आगे बढ़ें, जो कुछ करते बनें कर डालें । स्वामी जी जैसे महान् आत्मा के आने की प्रतीक्षा में बैठे रहें, तो न जानें कितना समय व्यतीत हो जाय; और जब रोगी का प्राणान्त हो जायगा, तब डाक्टर भी आकर क्या कर सकेगा, फिर तो हाथ मलना और पछताना मात्र रह जायगा । तब यही कहना पड़ेगा कि " अब पछताये क्या होत है, जब

चिड़ियाँ चुग गईं खेत"—अतः आप हिम्मत बाँधिये, साहस बाजिये, अपने धर्म रक्षा के पवित्र कार्य में दत्त चित्त हो जाइये—तो परमात्मा आपकी अवश्य सहायता करेंगे।

इति शम्—

नम्र निवेदकः—

मंगलानन्दः।

परिशिष्ट-२

उदार हिन्दू सज्जनों से निवेदन।

हिन्दू धर्म के प्रेमी सज्जनो! आप से मेरी यह प्रार्थना है कि इस पुस्तक को पढ़ लेने पर अगर हमारे सिद्धान्तों और मन्तव्यों से आप सहमत हों तो वैदिक-धर्मी समाज को अपनाइये और इसके द्वारा धर्म और जाति का सुधार कराइये। लेकिन अगर आप पूर्णतया सहमत न हों तो उस दशा में भी अपनी उदार सहायता से इस शुभ कार्य को जारी रखने दीजिये। हम देखते हैं कि आर्य-समाज ने जो गुरुकुल, कालिज आदि सैकड़ों संस्थायें स्थापित कर के लाखों रुपये वार्षिक खर्च का भारी कार्य चला दिया है वह निस्सन्देह आप लोगों (और आर्य समाजी हिन्दुओं) के ही सहायता पर अधिकांशतः निर्भर है, क्योंकि इने गिने आर्यसमाजी लोगों (२८ करोड़ हिन्दुओं में केवल सात आठ लाख मात्र) की आर्थिक स्थिति ऐसी कदापि नहीं हो सकती थी कि इतना भारी खर्च चला सकते। अतः जिस प्रकार आप लोग आर्य सामाजिक संस्थाओं को हिन्दू धर्म सुधारक मान कर सहायता देते हैं, उसी प्रकार आप से हम आशा रखते हैं कि अब आप लोग वैदिक समाज की भी अवश्यमेव सहायता करेंगे।

प्रश्न—हम तो यह समझते हैं कि वेदानुयायियों में से जो

आर्य-समाजी नहीं हैं उन सब लोगों को सनातन धर्मी माना जाता है—यदि ऐसा नहीं है तो हम सुनना चाहते हैं कि आप सनातन धर्मी किन को मानते हैं।

उत्तर—सनातन धर्मी हम उन कट्टर पुराने ढर्रे के हिन्दुओं को कहेंगे जो वर्तमान देश काल के सुधारों के विरोधी बन रहे हैं। उनकी समझ में अब भी आठ दस वर्ष की कन्याओं का विवाह कराना उचित है, विधवा विवाह अनुचित है, अछूतोद्धार भारी भूल है, शुद्धि पाप है, गांजा भाँग आदि देवता का प्रसाद है, दीवाली में जुवा खेलना, और होली में गालियाँ बकना, तथा रङ्ग कीचड़ फेंकना, शराब पीना भाँग, माजूम खाना धर्म है। मूर्ख, दुराचारी, निकम्मे साधु ब्राह्मण नाम धारियों को दान देते रहना ही पुराय है। समुद्र पार जाने वालों को जाति बाहर निकलवा देना परम कर्तव्य है। तीर्थ यात्रा से पाप छूट जाता है, गङ्गा स्नान मात्र से स्वर्ग मिल जायगा। गंजेड़ी, भगेड़ी, चरसी साधु तथा नांगा बाबा आदि का दर्शन करना बड़ा पुराय दायक है, गुरु नारायण रूप है। कबरों के शहीद मर्द, ग़ाज़ी मियाँ सन्तानें दे गे या धन दौलत दे दे गे, रोगी बालक मौलवी साहबों के झाड़ फूंक ताबीज़ों से अच्छे हो जाँयगे इत्यादि इत्यादि ख्यालात रखने वाले सनातन धर्मी (वस्तुतः आधुनिक या नवीन पन्थी) हैं।

प्रश्न—संस्कृतज्ञ पण्डित लोग उक्त कार्य्यों को सनातन धर्म नहीं मानते, ये सब मूर्खों की बातें हैं।

उत्तर—नहीं २, बड़े २ धुरन्धर विद्वान् भी इन्हीं बातों की पुष्टि कर रहे हैं। दृष्टान्त में आप को ज्ञात हो कि शारदा बिल का विरोध करने के लिये कि आठ दस साल की कन्याओं का पचास साठ साल वाले बूढ़ों के साथ

विवाह रचाना न बन्द कराया जाय) काशी की पण्डित मण्डली ने, लाहौर तक (जब वहां कांग्रेस की बैठक लगी थी), धावा किया था इत्यादि—

हमारा वैदिक समाज इन कुरीतियों को हटा कर सत्य सनातन वैदिक धर्म का संसार में प्रचार करायेगा, इस लिये आप हिन्दू धर्म के सच्चे प्रेमियों को हमारा साथ देना चाहिये।

आपका हितैषी—

मङ्गलानन्द

परिशिष्ट-३

शास्त्रार्थ का नियम।

इस पुस्तक को पढ़ कर कई महाशय शास्त्रार्थ के लिये तत्पर हो जायेंगे, इस लिये इस सम्बन्ध में निम्न विचार प्रकाशित किया जाता है :—

मैंने अनेकों शास्त्रार्थ आर्य समाजी पण्डितों का सनातनी विद्वानों और मुसलमान मौलवियों के साथ होते देखा है, परन्तु किसी में कभी कोई फैसला न हो सका, न किसी पक्ष वाले वैसे शुद्धान्तः करण से व्यवहार करते पाये गये जैसा श्री जगद्गुरु स्वामी शङ्कराचार्य्य और पण्डित मण्डन मिश्र महाराजों के शास्त्रार्थ में हुआ था। वरन् प्रायः झगड़े, फसाद, दङ्गे होते रहते हैं, और प्रत्येक पक्ष वाले अपने २ विद्वानों की जय मान लिया करते हैं इत्यादि अनुभवों के आधार पर इस कार्य को हम व्यर्थ समझते हैं। जो महाशय

चाहें प्रश्नों द्वारा सम्भाषण का परिवर्तन कर सकते हैं या एकान्त में (जहां कोई तीसरा मनुष्य न हो) प्रेम सम्मान-पूर्वक वार्तालाप करके अपनी कहें और मेरी सुनें। क्योंकि आप लौकिक शास्त्रों के भी बड़े ज्ञाता हैं वे प्रमाण किसी ऐसे संस्कृतज्ञ को मध्यस्थ बनाने के लिये तैयार हो जावें जो हम दोनों से भिन्न मतावलम्बी हो (यथा पादरी आदि) कि हमारे विवादास्पद वेदादि—वाक्यों के अर्थ पर निर्णय कर सके। जब किसी संस्कृत वाक्य या शब्द के अर्थ पर विवाद होगा—मैं एक अर्थ करूंगा, विपक्षी दूसरा अर्थ करेगा, तो जब तक कोई तीसरा ऐसा पञ्च न माना जाय जिस के निर्णय को हम दोनों शिरोधार्य करें तब तक गाड़ी कैसे आगे चलेगी ?

यह भी बतला देना उचित है कि संस्कृतज्ञ महात्मा गण खैंचातानी का अर्थ करने में बड़े कुशल हस्त रहा करते हैं—दृष्टान्त सुन लीजिये कि एक व्याकरणी महानुभाव ने अंग्रेजी शब्द "स्टुपिद्" Stupid (बेवकूफ) को संस्कृत सिद्ध करते हुए कह दिया कि "इष्टं पिदधाति इति स्टुपिद्—(जो अपने भलाई की बात का नाश करता है वह स्टुपिद्—बेवकूफ कहलाता है)। ऐसे व्याकरण में कुशल सज्जनों को नमस्कार करते हुये उन के कुतर्कों से बचने के लिये हमें यही सुगम मार्ग दीखता है कि 'वेदार्थ की कसौटी न बनाई जावे' इति।

सर्व हितैषी

मङ्गलानन्द पुरी

मधुर ग्रन्थमाला की पुस्तकों का विज्ञापन ।

अब तक इस माला के १२ पुष्प खिल चुके हैं और ... ... कली रूपमें विद्यमान हैं। उन पुष्प रूप (प्रकाशित) पुस्तकों का जनता ने कैसा मान्य किया है। यह दर्शाने के लिये हम उनकी समालोचनाओंमें से एक दो को नीचे उद्धृत करते हैं :—

१—प्राचीन ७० श्लोकी भगवद्गीता के बारे में सुविख्यात दार्शनिक लेखक श्रीमान् कन्नोमल जी एम० ए० जज धौलपुर राज्य लिखते हैं—(देखो प्रताप कानपुर ता० १५ अगस्त १९२६)।

"जावा द्वीप के समीप वाली द्वीप में डाक्टर ... ... सर ईसाई महाशय सन् १९१४ में गये और वहाँ इनको मालूम हुआ कि भीष्म पर्व में गीता के ७०० के स्थान में ७० श्लोक ही हैं। आपने उनको माडर्न रिव्यु (सन १९१४) में छपवा दिया...। स्वामी मङ्गलानन्द जी ने इसी के आधार पर इस पुस्तक को लिखा है। स्वामी जी ने श्लोकों की सङ्गति लगाने में बड़ा परिश्रम किया है, और इस कार्य में आपको सफलता भी प्राप्त हुई है।

इस पुस्तक के ७० श्लोक पढ़ने से यह भली भाँति ज्ञात हो जाता है कि जो कुछ भगवद्गीता का सिद्धान्त है वह सभी इसके अन्तर्गत है। स्वामी जी ने श्लोकों की सङ्गति बड़ी कुशलता और बुद्धिमत्ता से लगाई है। आपने बहुत से प्रमाणों से यह भी सिद्ध किया है कि असली गीता यही है। ... ...

"हमें यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं है कि स्वामी जी की पुस्तक विद्वानों के विचार करने योग्य है। सर्व साधारण लोगों के पढ़ने के लिए यह अत्यन्तोपयोगी है। आपने श्रुतियों के जो प्रमाण दिये हैं, उनसे श्लोकों का महत्व और भी बढ़ गया है। हिन्दी संसार के लिये यह पुस्तक एक नई चीज़ है। मूल्य छः आना।"

४—अफ्रीका-यात्रा।

इस ७३० पृष्ठ की भारी पुस्तक पर अनेकों समाचार पत्रों में उत्तम उत्तम समालोचनायें प्रकाशित हुई हैं। इन्दौर राज्य (हिन्दी साहित्य-समिति) से पुरस्कार मिला है, और संयुक्त प्रान्तीय शिक्षा विभाग ने हिन्दी तथा अँग्रेजी स्कूलों के पुस्तकालयों में रखने तथा इनाम में बाँटे जाने के लिये इस पुस्तक को स्वीकार कर लिया है। इस पुस्तक के बहु मूल्य समालोचनाओं में से एक को हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

आर्य मित्र आगरा ता० २३ अगस्त १९२८ के अङ्क में यों छपा है:—

"......लेखक ने प्रवासी भारतियों पर लगाए गए दोषों को निर्मूल सिद्ध करने के लिये न केवल अपने अनुभवों का उल्लेख किया है, वरन् यूरोपियन विद्वानों के वक्तव्यों में से उद्धरण देकर उसकी पुष्टि की है। इससे यह स्पष्ट पता चल जाता है कि लेखक ने किस चाव से प्रवासी भारतीयों के प्रश्न का अध्ययन किया है।

इसको पढ़ने से हमें उपन्यास पढ़ने का सा मनोरञ्जन और इतिहास पढ़ने का सा ज्ञान प्राप्त होता है। अफ्रिका

की भिन्न भिन्न जातियों के और भिन्न भिन्न प्रान्तों के प्रवासियों की प्राचीन दशा और आश्चर्य जनक बातों का जो वृत्तान्त है वह बड़ा चित्ताकर्षक है। इस में हमें एक देश के विषय में जो जो ज्ञातव्य बातें हैं, उन सब का ब्योरा मिल जाता है। जैसे जल वायु, उपज, पशु पक्षी, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, व्यापारिक परिस्थिति और वहाँ की विशेषता आदि। इसी में हमें पोर्चुगीज़, जर्मन और अङ्गरेज़ों के साथ जो व्यवहार हैं, उसका भी वृत्तान्त मिल जाता है।

केनिया के हिन्दुस्तानियों का हाल पढ़कर हमें दुःख होता है, अफ्रिकनों का वृत्तान्त पढ़कर हमें विस्मय होता है। चोरों की माया, अन्धेर नगरी आदि अध्यायों को पढ़ कर हंसी आती है। हिन्दुस्तानियों के नैतिक बल के विषय में पढ़कर स्वाभिमान से छाती फूलने लगती है। प्रवासियों के प्रति अपने कर्तव्य को ध्यान कर गम्भीर चिन्ता में मग्न हो जाना पड़ता है।

संन्यासी जी ने अपनी यात्रा की कठिनाइयों और उनके निवारण के उपाय लिखकर और हर एक प्रान्त में ठहरने के योग्य उचित स्थान और पत्र व्यवहार करने योग्य व्यक्तिओं और संस्थाओं का उल्लेख कर के अफ्रिका की यात्रा के इच्छुकों के लिये इसे अत्यन्त ही उपयोगी और सहायक बना दिया है। संन्यासी जी की उपदेश की छाप हर स्थान पर लगी हुई है। पुस्तक में लेखक जिन निर्णयों पर पहुँचा है, उससे बहुतों का मतभेद हो सकता है, फिर भी वे मनन करने योग्य हैं। पुस्तक अत्यन्त उपादेय है और

[illegible]

स्वामीजी की पूर्णरूप (प्रकाशित) पुस्तकों [illegible]

[illegible] (वैदिक [illegible]) (४) [illegible] [illegible] (६) [illegible] (७) मद्य-पत्र)॥ [८] वाजीकरण ।=) [९] [illegible] दायक है -)॥ [१०] मुसलमानों [illegible] [११] Vedic [illegible] [१२] Idolatry Non-[illegible] [illegible] by Europeans, -)॥

[illegible] पुस्तकों की सूची [illegible]

(१) [illegible] (३) [illegible] (४) वैदिक धर्म महत्व (५) [illegible] (६) श्री मान्धी जी महात्मा कैसे बने (७) [illegible] (वैद्यक के उत्तम २ नुसखों का संग्रह) (८) [illegible] (९) [illegible] (१०) [illegible] (११) [illegible] (१२) [illegible] हैं।

इन अप्रकाशित पुस्तकों का मूल्य [illegible] पर [illegible] अनुसार रक्खा जायगा।

पता—एस० एन० वर्मा [illegible]

[illegible]